राजकीय व्यय-प्रबंध के सिद्धांत

श्रीगोरखनाथ सिंह
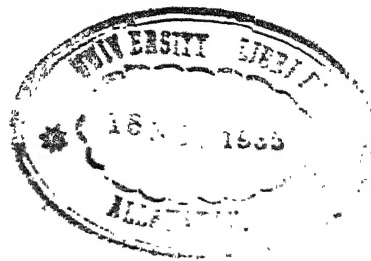
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलन-भवन : पटना ३

प्रथम संस्करण-संवत् वि०, २०११ ; सन् १६५५ ई०

मूल्य १) : सजिल्द १॥)

मुद्रक
वृन्दा प्रसाद सिंह
दयाल प्रिंटिंगप्रेस
न्यू मारकेट, पटना

वक्तव्य

भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद देश का शासन-सूत्र राष्ट्रीय सरकार के हाथ में आ गया है। जनतंत्रीय शासनपद्धति में शासक और शासित का अभिन्न सम्बन्ध होता है। भारतसंघ की जनता आज यह जानना चाहती है कि जन-कल्याण राज्य की आर्थिक व्यवस्था किस प्रकार की है। राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को समझने के लिए आज प्रत्येक देशानुरागी उत्सुक जान पड़ता है। ऐसे जिज्ञासु व्यक्तियों के समाधान के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के अधिकारी लेखक श्रीगोरखनाथ सिंह बिहार के सारन जिले के निवासी हैं। आपको इंग्लैण्ड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में डबल प्रथम श्रेणी की डिग्री मिली थी। आपने बिहार सरकार के शिक्षा-विभाग में सन् १९१९ ई० से सन् १९५१ ई० तक विभिन्न उच्च पदों पर काम किया है। इस समय आप भारतीय रिजर्व बैंक के सेंट्रल बोर्ड आफ् डाइरेक्टर्स के सदस्य हैं।

परिषद् की ओर से सन् १९५३ ई० में, १० मार्च से १५ मार्च तक, पटना-कालेज के बी० ए० लेक्चर थियेटर में, अर्थशास्त्र विषयक भाषणमाला का आयोजन किया गया था। इस पुस्तक के लेखक ने उसीके क्रम में यह भाषण किया था, जो आज इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत है। यद्यपि पुस्तक का विषय अत्यन्त गंभीर और जटिल है, तथापि लेखक ने, विषय का अनावश्यक विस्तार न करके, मुख्य-मुख्य सिद्धांतों का विवेचन बड़ी सुगमता से कर दिया है। पुस्तक के अन्त में जो पारिभाषिक शब्दावली सानुवाद दी गई है, उससे पुस्तक के गहन स्थलों को समझने में विशेष सुविधा होगी। आशा है कि परिषद् की अन्य पुस्तकों की तरह यह भी अपने विषय की एक नवीन मौलिक और प्रामाणिक पुस्तक सिद्ध होगी।

फाल्गुन-पूर्णिमा
सं० २०११

शिवपूजन सहाय
परिषद्-मन्त्री

भूमिका

इस पुस्तिका में, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद की ओर से, मेरी १९५२ ई० के प्रारम्भ की व्याख्यानमाला प्रकाशित की जा रही है। विषय यद्यपि कुछ कठिन तथा शुष्क है, तथापि इतना महत्त्वपूर्ण है कि गणतन्त्र राज्य की जनता को राजकीय-व्यय के शासन के सिद्धान्तों को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

इस शताब्दी के प्रारम्भ तक राज्याधिकारियों की मुख्य समस्या राज्य-संचालन के लिए प्रतिवर्ष धन इकट्ठा करने की थी। गत शताब्दी तक यह राजनीतिक सिद्धान्त माना जाता था कि रज्याधिकारियों को एक वर्ष की आवश्यकता से अधिक धन प्राप्त करने देना निरंकुशता की पुष्टि करना है।

आज राजनीतिक तथा सामाजिक विचारों तथा व्यवहारों में क्रान्ति होने के कारण, राष्ट्रीयकरण द्वारा, आर्थिक क्षेत्र में, राज्यों की अपनी आमदनी उत्तरोत्तर बढ़ रही है। यह प्रवृत्ति इतनी दृढ होती जा रही है कि साम्यवादी राष्ट्रों में तो स्वाधीन रूप से जीविका उपार्जन करने का क्षेत्र एकदम संकुचित हो गया है।

व्यक्तिगत स्वाधीनतावादी देशों में ही, देश की आय का प्रायः चालीस प्रतिशत, 'कर' के रूप में, राज्याधिकारियों के हाथों से खर्च होता है।

ऐसी हालत में जब कि सब प्रकार के राज्यों में नागरिकों के श्रम और जायदाद द्वारा उपार्जित धन थातीदारों के द्वारा खर्च होता है तब प्रत्येक नागरिक का यह राजधर्म या कर्त्तव्य हो जाता है कि राजकीय व्यय के शासन के सिद्धान्तों को समझे। केवल मतदान में भाग लेने से ही नागरिकता की जवाबदेही आज पूरी नहीं हो जायगी; परन्तु शासन के दैनिक संचालन में भी नागरिकों का योग देना आवश्यक है। यथार्थ और जीवित-गणतन्त्र के लिए इसका प्रबन्ध अत्यावश्यक है; परन्तु हमारे देश में इस तरफ शासन के अधिकारियों का या जनता का ध्यान अभी नहीं जा रहा है।

इस पुस्तिका का विषय विश्लेषणात्मक और सैद्धान्तिक है। विवरणात्मक समावेश आवश्यकतानुसार ही किया गया है और यह दिखलाया गया है कि व्यय-संचालन के व्यावहारिक नियमों के क्या सिद्धान्त और ध्येय हैं।

—गोरखनाथ सिंह

विषय-सूची

राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त

पहला अध्याय

राजकीय व्यय के अध्ययन की आवश्यकता और कठिनाइयाँ

अर्थ-विज्ञान में राजकीय व्यय-प्रबन्ध के अध्ययन का स्थान

अर्थ-विज्ञान की उत्पत्ति यूरोप के आधुनिक काल के प्रारम्भ के राजकीय आय-व्यय तथा देश की आमदनी, जिससे राजकीय आय प्राप्त होती है, के अध्ययन से मानी जाती है। आगे चलकर इस विज्ञान का विकास विविध कालों में अपनी समसामयिक समस्याओं के अनुसार होता गया। सार्वजनिक वित्त (राजकीय आय-व्यय) का अध्ययन इस विज्ञान में बराबर दृष्टिगत रहा है; परन्तु 'आडम स्मिथ' के काल से ही इसमें राजकीय व्यय के प्रबन्ध की अपेक्षा राजकीय आय के सिद्धान्तों पर अधिक ध्यान दिया गया है। इसका एक कारण यह है कि राजकीय व्यय का सम्बन्ध विशेषतः शासन से रहा है। दूसरा कारण यह है कि तात्विक या सैद्धान्तिक अर्थविज्ञान के सिद्धान्त इस व्यावहारिक शास्त्र में पूर्णतः लागू नहीं होते। तीसरा कारण यह रहा है कि वर्तमान काल में गत सदी तक वैयक्तिक आर्थिक स्वतन्त्रतावाद (Laissez Faire School) का यह सिद्धान्त रहा है कि राजकीय व्यय यथासाध्य कम रहे। इस कारण जब हम सार्वजनिक वित्त (राजकीय आय-व्यय) की किसी भी पुस्तक को देखते हैं, तब हम पाते हैं कि व्यय के विषय पर कम ध्यान दिया गया है। परन्तु गत पाँच शताब्दियों में तथा विशेषतः गत पाँच वर्षों में जो राजनैतिक तथा आर्थिक विकास सब देशों में हुए हैं, उनकी दृष्टि से अब राजकीय व्यय की व्यवस्था और सिद्धान्तों का अध्ययन पहले से बहुत अधिक आवश्यक हो गया है।

राजकीय व्यय-वृद्धि के कारण

वर्त्तमान युग में प्रत्येक देश या राष्ट्र के राजकीय व्यय में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है ; और हमारे देश में तो हमारी स्वाधीनता के बाद अन्य कई कारण भी आ गये हैं। मध्य युग के बाद और वर्त्तमान युग के प्रारम्भ से ही राज्यों के विस्तार बढ़ते रहे हैं। छोटी-छोटी रियासतों की जगह जातीय (नेशनल) राष्ट्रों की उत्पत्ति हुई। साथ-साथ

सब देशों में जनसंख्या में वृद्धि होती रही। जातीय राष्ट्रों के पारस्परिक संघर्षों के कारण सैनिक तथा युद्ध के व्यय बढ़ते रहे। अठारहवीं सदी से कृषि, उद्योग और यन्त्रों के विकास से धन की बहुत तेज वृद्धि होने लगी। यंत्रों के विकास से युद्ध के औजारों में विकास होता गया, सैनिक संगठन तथा युद्ध करने के व्यय बढ़े और युद्ध की तैयारी या युद्ध-ऋण के बोझ भी बढ़े। राष्ट्रों की औद्योगिक उन्नति के साथ अन्तरराष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता तथा सैनिक व्यय और भी बढ़े हैं।

इधर पचास-साठ वर्षों में सामाजिक आदर्शों में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है, वह भी राजकीय व्यय के बढ़ने का बहुत व्यापक कारण है। स्वावलम्बी कारीगर-वर्ग का नाश तथा बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना से श्रमिकों की जीविका कई प्रकार से आपद-ग्रस्त हो गई। उनकी जीविका, आमदनी इत्यादि मिल-मालिकों की इच्छा पर तथा आर्थिक स्थितियों पर निर्भर हो गई। समाज की बढ़ती आय का उचित भाग प्रतियोगी समाज में उनको न मिला। साथ-ही-साथ जनता संघ की शक्ति को समझने लगी और उसके राजनैतिक अधिकार भी लोकतन्त्र के विकास के साथ बढ़े। इन आर्थिक और राजनैतिक कारणों से राजकीय आय व्यय प्रबन्ध के द्वारा आर्थिक विषमता दूर करना, श्रमजीवियों की जीविका की आपदाओं को हटाना, शिक्षा-प्रचार तथा जन-स्वास्थ्य के द्वारा जनहित में उन्नति करना एक आवश्यक सामाजिक ध्येय हो गया और लोकतन्त्र का जोर इसकी प्राप्ति के लिए बढ़ता गया।

तीसरे कारण पर विचार करने के पहले, राजकीय व्यय के वर्गीकरण का यहाँ उल्लेख कर देना जरूरी है। कुछ राजकीय व्यय ऐसे हैं जो अनिवार्य हैं ; जैसे बाहरी शत्रुओं या भीतरी शत्रुओं से समाज की रक्षा, और भीतरी शान्ति-शासन या न्याय-विभाग पर व्यय इत्यादि। कुछ ऐसे व्यय हैं जो इस अर्थ में ऐच्छिक हैं कि राजकीय आमदनी के अनुसार इनमें कमी-बेसी की जा सकती है। अनिवार्य विषयों पर भी सीमान्त व्यय कुछ हद तक ऐच्छिक हैं; क्योंकि उनमें एक सीमा के अन्दर देश की आय के अनुसार कुछ कमी-बेशी की जा सकती है। जनहित के लिए जो व्यय हैं, वे हैं तो नितान्त लाभदायक, पर वे राष्ट्रीय आय और राजकीय आय के अनुसार ही उठाये जा सकते हैं। यद्यपि ये ध्येय परोक्षतः (अन्ततोगत्वा) उपार्जक हैं; क्योंकि जिस समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य, जीविका की निश्चयता इत्यादि का सुन्दर प्रबन्ध है, वहाँ की व्यक्तिगत तथा सामूहिक उत्पादन-शक्ति अधिक होगी और इससे राष्ट्रीय आय बढ़ेगी। परन्तु प्रथमतः इनपर भी तो खर्च उसी दशा में किया जा सकता है जब कि राजा तथा समाज की रक्षा के व्यय के बाद कुछ रकम बचे, हालाँकि एक मत यह भी है कि जिस राष्ट्र में जनहित पर व्यय उसकी आर्थिक शक्ति के बाहर हो तो उस राष्ट्र की रक्षा के लिए भी व्यय करना निरर्थक है।

तीसरे वर्ग के व्यय को हम उत्पादक व्यय कह सकते हैं। पूँजीवादी समाज में भी बहुत-से उद्योग और व्यवसाय सरकार की ओर से चलाये जाते हैं : जैसे रेल, डाक,

तार, नहर आदि का निर्माण और संचालन। साम्यवादी समाज का तो यह सिद्धान्त है कि उद्योगों का प्रबन्ध जिनमें मजदूरी पर काम कराना पड़े, राज्य की ओर से होना चाहिए। इसका एक अभिप्राय यह भी है कि उद्योगों के सब लाभ राजकीय आय के रूप में समाज को मिलें। इस कारण हम देखते हैं कि कुल राजकीय व्यय का बढ़ता हुआ हिस्सा राजकीय उद्योगों में खर्च होता है। यद्यपि इस वर्ग के व्यय का आसन व्यावसायिक व्यय के नियमों के अनुसार होता है, तथापि इसका उल्लेख यहाँ आवश्यक था।

हमारे देश में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजकीय व्यय की वृद्धि बहुत तेजी से हुई है। इसके कारण प्रत्यक्ष हैं। स्वाधीनता के पहले हमें ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के प्रबन्ध के कारण भारत के ऊपर इस व्यय का बोझ आंशिक रूप में आता था। जब-जब हमें अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ता है, साम्राज्य की सैनिक-रक्षा के व्यय का लाभ हमें नहीं प्राप्त होता है। देश की भीतरी शान्ति पर भी अधिक खर्च करना पड़ रहा है, क्योंकि गणतन्त्र राज्य में किसी अविश्वस्त दल या वर्ग को हम दमन नीति से दबाकर नहीं रख सकते; परन्तु इनके विचार या कार्य राष्ट्र के हित के विरुद्ध हों तो देश की देखभाल पर अधिक खर्च करना पड़ेगा जिसका उदाहरण 'होमगार्ड' पर हमारा व्यय है। इसके अलावा संविधान के मूल अधिकारों तथा राष्ट्रीय नीति-निर्देशक-धाराओं के अनुसार जनता को शिक्षा आदि के द्वारा गणतंत्र राष्ट्र के योग्य नागरिक बनाने और उसके आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्तर को उन्नत करने के फलस्वरूप हमारे राष्ट्रीय खर्च इधर बढ़ रहे हैं, और अभी बढ़ेंगे। पंचवर्षीय योजना के आंकड़े इस व्यय के केवल आरम्भमात्र हैं। अन्त में प्रजातन्त्र राज की व्यवस्था खर्चीली होती ही है। हमें इस प्रणाली को चलाने के लिए भी व्यय बढ़ाना पड़ा है।

अन्त में एक और कारण का भी उल्लेख आवश्यक है। हमें एकाएक शासन विभागों का विस्तार करना पड़ा और नये-नये विभाग खोले गये। साथ ही पुराने अनुभवी अंग्रेज पदाधिकारी चले गये और उनकी जगह नये लोगों से काम चलाना पड़ा। फिर, मुद्रास्फीति आदि कई कारणों से भी बिना अधिक प्रयास के ही राजकीय आय बढ़ी। इसके साथ भारत सरकार को स्टरलिंग पावना के रूप में एक भारी रकम तथा प्रान्तों या राज्यों को जमा ओपनिंग बैलेंस हाथ लगा, जिसकी ओर उनकी सरकारों का वही हाल हुआ जो कि बड़ा पितृधन मिल जाने पर एक अनुभवहीन युवक का होता है। इन दोनों कारणों से भी बहुत-कुछ अन्धाधुन्ध खर्च बढ़े जो कि अनिवार्य थे। साथ ही व्यय के प्रशासन और नियंत्रण में भी बहुत ढीलापन आ गया है और वे नियम जिनका अँग्रेजी शासन में बहुत कड़ाई से पालन होता था, बहुत उल्लंघित होने लगे हैं।

राजकीय अर्थ-व्यवस्था के अध्ययन की कठिनाइयाँ

इन कारणों से उपार्जकों की आमदनी या राष्ट्रीय आय का वह अंश जो व्यक्तिगत

अधिकार-परिधि से निकल कर राजकीय अर्थ-व्यवस्था द्वारा खर्च होता है, उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। अर्थात् हम जितना धन अपने प्रयास से उपार्जन करते हैं, उसका बढ़ता हुआ हिस्सा किसी-न-किसी रूप में, कर या शुल्क या बाजार दर से अधिक कीमत के रूप में, राज्य को व्यय करने के लिए देते हैं। व्यक्तिगत व्यवसाय की परिधि से निकल कर धीरे-धीरे बहुत से व्यवसाय राज्य के द्वारा संचालित होते जा रहे हैं जिससे जातीय आय का बढ़ता हुआ हिस्सा राज्य को लाभ या अन्य पारिश्रमिक के रूप में मिलता है।

इस परिस्थिति या प्रवृत्ति को दो दृष्टिकोणों से हम देख सकते हैं। हम इसको इस अर्थ में ले सकते हैं कि जनता अपने प्रजातन्त्र राष्ट्र-रूपी संगठन के द्वारा देश की आय के बढ़ते अंश को सामूहिक आवश्यकताओं के लिए सामूहिक तन्त्र द्वारा खर्च करने का निर्णय करती है। या यों कह सकते हैं कि राजसत्ता की शक्ति द्वारा सरकार मूल उपार्जकों की आय के बढ़ते हुए अंश को किसी-न-किसी रूप में अपने हाथों में लेकर उसका व्यय राज्य की शासन-प्रणाली द्वारा करती है।

अब हमें देखना है कि व्यक्तिगत या गैर-सरकारी व्यय के क्षेत्र में मूल उपार्जकों या भोक्ताओं के आर्थिक आचरण के विषय में हमें तात्विक या सैद्धांतिक अर्थ-विज्ञान की सहायता कहाँ तक मिलती है? वास्तव में तात्विक या सैद्धांतिक अर्थ-विज्ञान व्यक्तियों के स्वतन्त्र या अनियंत्रित आर्थिक आचरण—जो स्वतन्त्ररूप से पारस्परिक लाभ के हेतु तुलनात्मक आर्थिक आचरण या व्यवहार द्वारा सामूहिक या बाजार के व्यवहार में परिणत होता है—के ऊपर निर्मित हुआ है। परन्तु इस स्वतन्त्र व्यक्तिगत या स्वतन्त्र परस्पर हित के लिए किये गये सामूहिक आर्थिक आचरण के सिद्धान्त किसी नियंत्रित आर्थिक आचरण के क्षेत्र में नहीं लागू हो सकते हैं। किसी भी नियंत्रित क्षेत्र में, जिसमें राजकीय व्यय का क्षेत्र शामिल है, तात्विक अर्थ-विज्ञान के सिद्धान्त बहुत ही सीमित रूप से लागू होंगे, यद्यपि सब आर्थिक क्षेत्रों में सीमित प्रसाधनों (*Limited resources*) का अपरिमित आवश्यकताओं में वितरण एक व्यापक समस्या है। परन्तु स्वतन्त्र व्यक्तिगत आर्थिक क्षेत्र में अपने अर्थ या हित को अधिकतम करने के लिए व्यय-विषयक वितरण का निर्णय व्यक्तियों द्वारा होता है। नियंत्रित राजकीय व्यय के क्षेत्र में विविध उपयोगों के बीच धन का वितरण या व्यय का निर्णय जनता के प्रन्यासी या थातीदार (*fiduciary*) सरकार द्वारा होता है अर्थात् राजकीय व्यय के क्षेत्र में सरकार का वित्तीय या आर्थिक आचरण राज्य द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार होता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर जाते हैं कि राजकीय अर्थशास्त्र या वित्तशास्त्र उद्देश्यात्मक अध्ययन है जिसमें विचारगत (*Subjective*) अन्तर के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र है और जहाँ तात्विक अर्थ-विज्ञान के विषयगत (*Objective*) सिद्धान्त पूरी तरह लागू नहीं होते हैं। यहाँ हमें अर्थविज्ञान और अर्थशास्त्र में अन्तर समझना आवश्यक है। सैद्धान्तिक, तात्विक या विश्लेषणात्मक अध्ययन को हमें अर्थविज्ञान या (*Pure,*

formal or Analytical Economics) समझना चाहिए। अर्थशास्त्र से हमें उद्देश्यवादी और व्यावहारिक अर्थशास्त्र (*Normative and Applied Economics*) समझना चाहिए जिसमें हम आदर्श, ध्येय या उद्देश्य का अध्ययन और निर्माण करते हैं। अर्थविज्ञान में हम तुलनात्मक सिद्धान्तों के आधार पर तथा स्वतन्त्र व्यक्तिगत या सामूहिक तोलनात्मक या तुलनात्मक आर्थिक आचरण, और विशेषकर उपयोगिता विशेष के क्रमगत ह्रास तथा समसीमान्त उपयोगिता के ठोस सिद्धान्तों पर निर्धारित तात्त्विक विज्ञान का निर्माण कर सकते हैं जिनके सिद्धान्त सर्वमान्य या ग्राह्य होते हैं। परन्तु, जहाँ मूल उद्देश्य, ध्येय या आदर्श में ही मतभेद हो सकता है, उस क्षेत्र में किसी सर्वमान्य विज्ञान का निर्माण कठिन है। आज के हमारे अध्ययन की यह मौलिक कठिनाई है कि हम समूची राष्ट्रीय आय के व्यक्तिगत और सार्वजनिक या राजकीय व्यय के बीच वितरण करने के लिए या व्यय-विशेष का निर्णय करने के लिए अर्थविज्ञान के समसीमान्त उपयोगिता के सिद्धान्त का प्रयोग नहीं कर सकते। एक क्षेत्र में तात्त्विक तथा विषयात्मक (*Objective*) सिद्धान्त लागू होते हैं तो दूसरे में विचारात्मक (*Subjective*) और दोनों क्षेत्रों के बीच कोई उभयनिष्ठ कारक (*Common factor*) नहीं है। और पिछले क्षेत्र के अन्दर आदर्श और उद्देश्य के इतने रूप हो सकते हैं और इनमें इतने पारस्परिक अन्तर हो सकते हैं कि हम यहाँ किन्हीं सर्वमान्य नियमों या सिद्धान्तों को नहीं निर्धारित कर सकते हैं। राजकीय वित्तशास्त्र में इतने प्रकार के पारस्परिक विरोधात्मक उद्देश्य या आदर्श हैं कि इसके तथा तात्त्विक अर्थविज्ञान के बीच कौन कहे, राजकीय अर्थ या वित्तशास्त्र के भीतर भी कोई आन्तरिक लय या सामञ्जस्य (*Internal Harmony*) सम्भव नहीं है।

राजकीय व्यय-प्रबन्ध में थातीदारी का सिद्धान्त

इन विविध ध्येयों पर विचार करने के पूर्व एक और विश्लेषण आवश्यक है। वह यह है कि हम ज्योंही तात्त्विक अर्थविज्ञान से उतर कर ध्येयवादी अर्थशास्त्र में आते हैं, त्योंही हम व्यक्तिगत और बाजारगत आचरण के सिद्धान्त की नींव से अलग हो जाते हैं, और दूसरों के धन को खर्च करने में थातीदारी का प्रश्न आ जाता है। यहाँ खर्च करनेवाले मूल उपार्जक के थातीदार (*Fiduciary*) होते हैं। इस कारण उद्देश्यों का उचित निर्धारण बहुत आवश्यक, परन्तु बहुत कठिन भी हो जाता है।

सार्वजनिक वित्त के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त

राजकीय अर्थ-व्यवस्था में अनेक ध्येय या आदर्शवाद होने पर भी हमें विचार करना है कि किन-किन मुख्य ध्येयों या आदर्शों के अनुसार राष्ट्रीय आय का वितरण व्यक्तिगत और राजकीय आर्थिक क्षेत्र खण्डों के बीच होता है या हो सकता है। व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रतावाद (*Laissez faire*) के अनुसार उपार्जकों की आय का कम-से-कम अंश राजकीय कोष के द्वारा खर्च होना चाहिए; क्योंकि व्यक्तियों के हाथ में जो धन रहता है, वह व्यक्तिगत परिश्रम और उद्योग के द्वारा उत्पादक रूप में खर्च होगा। इसके

अलावा व्यक्तित्व के विकास के लिए भी नागरिकों को आर्थिक स्वतन्त्रता की जरूरत है। इसके अलावा, जब उपार्जक अपनी कमाई अपनी जवाबदेही पर व्यय करता है, तब उससे उपयोगिता में अधिक-से-अधिक लाभ होता है जो थातीदार के द्वारा खर्च होने में नहीं होता है।

परन्तु, व्यावहारिक रूप में इतिहास में देखा गया है कि आर्थिक स्वाधीनता से व्यक्तियों और देश को धन की वृद्धि से लाभ तो हुआ; परन्तु साथ ही मानव-प्रकृति तथा कुछ आर्थिक नियमों की प्रक्रिया के कारण धनिकों का धन बढ़ता गया और श्रमिकों को देश के बढ़ते धन का उचित भाग न मिला। आर्थिक स्वतन्त्रता पर निर्धारित प्रतियोगिता से देश की आर्थिक व्यवस्था की उत्पादन-क्षमता बढ़ी; मगर साथ ही प्रतियोगिता से धन की बर्बादी भी हुई। रचनात्मक स्वार्थ से जिस लाभ की आशा की गई थी, वह हासिल न हुआ। व्यक्तिगत स्वार्थ पारस्परिक, सामूहिक और सामाजिक सहयोग और सहानु-भूति का शत्रु निकला। इस प्रकार अनियंत्रित आर्थिक स्वतन्त्रता ने अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारी। इस कारण साम्यवाद का सिद्धान्त है कि देश का धन सामाजिक प्रयास से अर्जित और खर्च हो। या हम यों कहें कि व्यक्तिगत आर्थिक स्वतंत्रता समाजहित के अनुकूल नहीं है; क्योंकि इसके द्वारा स्वार्थवाद का इतना विस्तार होता है कि परार्थ या समाजार्थ की गुंजाइश नहीं रहती है। कारणवश व्यक्तिगत स्वतंत्रता से लाभ उठाते हुए उसकी समाज-प्रतिकूल-प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करने में जो शक्ति-विक्षेप होगा, उससे समाज की ओर से समाज की आर्थिक व्यवस्था के संचालन में ही शक्ति का मितव्यय होगा। परन्तु इस सिद्धान्त की भारी कमजोरी यह है कि यदि हम तमाम व्यक्तियों को और उनकी इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा ओज, तेज और शक्ति को नियंत्रण की जंजीर में जकड़ देते हैं तो वह भी लोकहित और व्यक्तिहित के लिए वैसे ही घातक होगा जैसे अनियंत्रित आर्थिक स्वतंत्रता आत्मघाती साबित हुई।

व्यावहारिक रूप में हम पाते हैं कि इन्हीं दो सीमाओं के बीच विविध राष्ट्रों की नीतियाँ निर्धारित होती हैं। इस कारण इस विषय पर कोई सर्वस्वीकृत सिद्धान्त नहीं पाया जाता। विशेषकर राज्यों के अनिवार्य राजकीय व्ययों (जैसे रक्षा, पुलिस, न्याय आदि पर के खर्च) की विशेषता यह है कि उनके सम्बन्ध में सीमान्त उपयोगिता का हिसाब लगाना असम्भव है; क्योंकि वे प्रधानतः गैर-आर्थिक कार्यों पर खर्च होते हैं। हम एक ठोस मापदण्ड इस सिद्धान्त का बना सकते हैं कि अमुक रकम के व्यय करने से जो तौलनात्मक या तुलनात्मक सामान या सेवा का उत्पादन हो, वह राजकीय क्षेत्र में अधिक होता है या व्यक्तिगत क्षेत्र में। यानी हम यह मापदण्ड लगा सकते हैं कि अमुक रकम के व्यय से सीमान्त तथा मोट उपयोगिता (जिसमें व्यक्तिगत तथा सामाजिक उपयोगिता दोनों का लेखा ले लेना चाहिए) दोनों किस मार्ग से व्यय करने से अधिक होता है या कौन मार्ग अधिक मितव्ययी है। परन्तु यह मापदण्ड भी उसी क्षेत्र में लागू हो सकता है जहाँ व्यय का उद्देश्य राजकीय या व्यक्तिगत

क्षेत्रों के बीच ऐच्छिक हो। फिर, यह मापदण्ड राज्यों के व्यावसायिक प्रयासों की ही तुलनात्मक क्षमता जांचने के लिए व्यवहार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, हम इस मापदण्ड को यह देखने के लिए व्यवहार कर सकते हैं कि रेल-संचालन या विद्युत-शक्ति के उत्पादन में या अन्य व्यवसायों में कौन रास्ता अधिक मितव्ययी या लाभदायक होगा। और जैसा कि उल्लेख किया गया है, इसके व्यक्तिगत प्रत्यक्ष लाभ की कीमत के साथ परोक्ष सामूहिक हानि या लाभ का भी हिसाब ले लेना होगा जिससे तुलना ठीक से हो सके।

व्यय-व्यवस्था में व्यक्तिगत व्यय की तुलना में राजकीय व्यवस्था के माध्यम से व्यय के पक्ष में दो-तीन और कारकों का निरूपण कर सकते हैं। पहला तो यह है कि व्यय के निर्णय के समय तथा व्यय के लाभ की प्राप्ति के बीच में अवधि (*Time horizon of the consumer*) का प्रश्न आता है। व्यक्तिगत व्यय निर्णय भी किसी समय बिन्दु पर ही नहीं होता है। किसी रकम को भोजन, वस्त्र आभूषण, गृह, उत्पादक पूंजी आदि के उपयोगों में वितरण करने में हम इनकी उपयोगिताओं की विविध अवधि की तुलना कर के व्यय-वितरण का निर्णय करते हैं। और राष्ट्रीय आय के विविध उपयोगों में वितरण में समाज या राष्ट्र के व्यय निर्णय में अवधि विस्तारजनित कठिनाइयाँ विवेक-युक्त निर्णय द्वारा आंशिकरूप में ही हल की जा सकती है। बहुधा यह निर्णय शासन-परम्परा के अनुसार होता है।

यहाँ विवेक का उल्लेख एक अन्य दृष्टिकोण से भी आवश्यक है। व्यय निर्णय में या मनुष्य के किसी भी आचरण क्षेत्र में विवेक तथा विवेकेतर प्रवृत्तियों में संघर्ष और संमिश्रण होता रहता है। अठारहवीं सदी के दार्शनिकों का मनुष्य के आचरण क्षेत्र में विवेक पर विश्वास उन्नीसवीं सदी के मनोविज्ञान की खोजों से गलत साबित हुआ। अर्थात् व्यय में व्यक्तिगत आर्थिक स्वतंत्रता से व्यय-वितरण विवेकात्मक समाज हित को कौन कहे, व्यक्तिगत हित के अनुसार भी नहीं होता है। उदाहरण के लिए, आप पायेंगे कि ब्रिटेन में जितने घरों में स्नानागार हैं, उनसे अधिक घरों में रेडियो सेट हैं, यानी व्यक्तिगत स्वतंत्रता रेडियो सुनने को परिवार की व्यक्तिगत सफाई से अधिक लाभदायक समझती है। वैसे ही आप देखेंगे कि हमारे बच्चों की प्राथमिक पुस्तकों के कागज, छपाई, चित्रण आदि सिनेमा-सम्बन्धी पत्रिकाओं की अपेक्षा खराब है। सिनेमा घरों की बनावट, सजावट तथा अन्य व्यवस्था स्कूल कालेज, अन्वेषणशालाओं (रिसर्च लेबोरेटरियों) से अधिक कीमती हैं; क्योंकि व्यय करनेवाले व्यक्ति एक पर अधिक धन खर्च करने का निर्णय करते हैं। इसपर सैद्धान्तिक या तात्त्विक अर्थविज्ञान के पंडित कहेंगे कि उनको व्यक्तियों के व्यावहारिक आचरण से ही मतलब है और आचरण कैसा होना चाहिए। इसका निर्णय उनके अध्ययन क्षेत्र से बाहर है और वह नीतिशास्त्र, समाज-विज्ञान या राजनीति का क्षेत्र हो जाता है। इसी कारण सैद्धांतिक अर्थविज्ञान के अनुयायी पीगू के व्यक्तिगत सीमान्त उपयोगिता

और सामूहिक सीमान्त उपयोगिता (*Marginal net product and serial marginal net product*) के मापदण्डों को जाति-च्युत समझते हैं। परन्तु राजकीय या सामाजिक अर्थशास्त्र के लिए यह विश्लेषण बहुत उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है। इस मापदण्डों से व्यक्तिगत तथा राजकीय व्यय के बीच उपयोगिता की तुलना के लिए इस सिद्धान्त को हम बहुत आवश्यक पाते हैं जिसका उल्लेख उचित स्थान पर किया दिया गया है और यहां भी इसको देख लेना चाहिए।

जब किसी धन या पूंजी का योगात्मक या उत्पादनार्थ व्यय किया जाता है, तब उसके प्रत्यक्ष फल के अलावा परोक्ष फल भी निकलते हैं। पीगू ने इस सिद्धान्त के केवल उत्पादनार्थ व्यय के ही सम्बन्ध में विश्लेषण किया है; परन्तु इस सिद्धान्त को योगात्मक व्यय में भी लागू करना आसान है। तो हम देखते हैं कि किसी व्यय विशेष के कुल सामाजिक फल या उपयोगिता जानने के लिए व्यय-निर्णय तथा व्यय-प्रक्रिया के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष और उपयोगिता फलों और अनुपयोगिता फलों का मिलान करके अन्तिम वास्तविक फल निकालना चाहिए। जैसे, यदि हम अपने मकान या हाते में बागीचा लगाते हैं तो व्यक्तिगत उपयोगिता के अलावा आसपास के घरवालों को भी शुद्ध वायु की उपयोगिता मिलती है और यदि हम अपने हाते में एक तरफ गढा करके घर भरते हैं तो पड़ोसियों को तंग करने के लिए मच्छरों का भी अड्डा साथ-साथ बना देते हैं। यदि कोई चीनी का कारखाना किसी गाँव में खुलता तो प्रत्यक्ष लाभांश के अलावा परोक्षतः वहाँ के लोगों की जीविका के साधन बढ़ते हैं, परन्तु ईख ढोनेवाली बैलगाड़ियों के कारण सड़क मरम्मत का व्यय बढ़ता है; तथा कारखाने का गन्दा पानी निकटस्थ नदी में गिरने से उसमें की मछलियों के मर जाने से वहाँ की आय में कमी हो जाती है। फलतः, यह आशा की जाती है कि राजकीय-व्यय क्षेत्र में सामूहिक सीमान्त उपयोगिता का सिद्धान्त व्यय-निर्णय तथा व्यय-प्रक्रिया में दृष्टिगत रहा करेगा, और राजकीय व्यय से व्यक्तिगत मितव्यय की कमजोरियों को बहुत अंश तक दूर किया जा सकेगा।

इसके बाद हम यह देखने का प्रयास करें कि समसीमान्त उपयोगिता के सिद्धान्त का व्यवहार वित्तीय प्रशासन में कहाँ तक कर सकते हैं। हम इस विषय में राजकीय व्यय का तीन खण्डों में यानी अनिवार्य, ऐच्छिक तथा व्यावसायिक व्ययों में वर्गीकरण देख चुके हैं। हम देखते हैं कि परस्पर इन व्यय-खण्डों के बीच भी समसीमान्त उपयोगिता को तौलने के लिए उभयनिष्ठ कारक या वाहक (*Common factor or medium*) नहीं है। प्रत्येक खण्ड में दर्जनों प्रकार के भिन्न-भिन्न विभागीय व्यय, तथा प्रत्येक विभागीय व्यय क्षेत्र में हजारों ब्योरेवार खर्च के मद हैं, जिन पर सैकड़ों वेतनभोगी पदाधिकारी थातीदार के रूप में जनता के धन के व्यय का निर्णय करते हैं। हाँ, एक बात हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रशासक विभाग (*Adminis-trtive Departments*) के अध्यक्ष अपने विभाग के व्यय के विषय में भिन्न-भिन्न

उपयोगों के बीच वितरण करते हैं और मोटामोटी उनके बीच की तुलनात्मक आवश्यकता और समसीमान्त उपयोगिता का विचार करते हैं। परन्तु, उनके बजट-अनुमान का अधिकांश तो स्थायी व्ययों में जाता है जिसमें निर्णय या इच्छा के लिए कम गुंजाइश रहती है। तुलनात्मक उपयोगिता का प्रश्न कुछ अंश में नई योजनाओं के ही सम्बन्ध में आ सकता है।

और जब विविध विभागों के बजट-अनुमान वित्त विभाग में संकलित होते हैं तब वहाँ विविध विभागों के बीच के व्यय में उपयोगिता की तुलना हो सकती है और वित्त-विभाग का एक यह मुख्य काम है भी। परन्तु, यहां भी इस तुलनात्मक मापदण्ड का लगाना कठिन काम है। इस कठिनाई के सम्बन्ध में यहाँ यही उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि यहाँ वैधानिक बाधा यह है कि प्रभृत व्यय, जो कुल राजकीय व्यय का एक बड़ा अंश है, प्रतिनिधियों के अदल-बदल करने की शक्ति के बाहर है। व्यावहारिक रूप में कुल रकम के वितरण का रास्ता विभागान्तर दबावों पर निर्भर करना है, तथा वित्त-विभाग और मन्त्रिमण्डल को भी केवल नई योजनाओं पर खर्च, (जो बजट के द्वितीय संस्करण में जाते हैं) में ही कुछ अदल-बदल करने की गुन्जाइश रहती है। यही अन्य कारणों में एक है कि हम आर्थिक नव-निर्माण की योजनाओं पर अब अलग विचार करते हैं और इनकी अवधि वर्ष के अन्दर सीमित नहीं रखते हैं। इसके अलावा; नई योजनाओं के निर्णय में वित्त–विभाग के स्तर पर भिन्न-भिन्न विभागों की योजनाओं के बीच व्यापक दृष्टिकोण से व्यय-वितरण में सीमान्त उपयोगिता की तुलना की जाती है, यद्यपि यहाँ भी शुद्ध आर्थिक मापदण्ड नहीं लागू किये जा सकते हैं।

इस विषय में हम देख चुके हैं कि सामाजिक दृष्टिकोण का व्यक्तिगत दृष्टिकोण की तुलना में समय या अवधि के ख्याल से व्यय-निर्णय अधिक व्यापक तथा विवेकयुक्त होने की आशा की जाती है। और जब नई योजनाओं का निर्णय एक अवधि के लिए, जैसे पाँच वर्षों के लिए, होता है तो दृष्टिकोण की व्यापकता तथा विवेकयुक्त निर्णय की सम्भावना और दृढ हो जाती है।

इस प्रकार राजकीय व्यय की अनुमान-अवधि एक वर्ष के अन्दर नहीं सीमित करके, आयोजना विशेष के अनुसार, एक वर्ष से अधिक विस्तृत अवधि या उत्पादन अवधि भर के लिए, बजट अनुमान करने के महत्त्व को, अब हम समझने लगे हैं।

राजकीय व्यय-व्यवस्था में थातीदारी का सिद्धान्त

राष्ट्रीय आय का राजकीय व्यवस्था और उपार्जकों के द्वारा व्यय के बीच वितरण के सम्बन्ध में पहले भाग में थातीदारी के सिद्धान्त का उल्लेख हो चुका है। अब इसका कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन यहाँ कर देना जरूरी है। हम देखेंगे कि यह भी हमारे अध्ययन के विषय को, तथा व्यवहार में वित्तीय शासन को, और कठिन बना देता है।

जनराज्य का यह एक मौलिक सिद्धान्त है कि हर व्यक्ति को नागरिकता का समान अधिकार है। इस कारण बड़ा उपार्जक या छोटा या एकदम निर्धन हो, सबको

बराबर निर्वाचन-सत्त्व है। अब धन या उपार्जन-शक्ति की राशि में निर्वाचन-शक्ति या राज्य के संचालन में अधिकार नहीं होता है। यानी समस्त जनता जब निर्वाचन स्वत्वा का व्यवहार करती है तब उपार्जकवर्ग की थातीदारी उठाती है। दूसरी सीढ़ी में निर्वाचकों के प्रतिनिधि जब प्रतिनिधि-सभाओं में बैठते हैं तब वे निर्वाचकों के थातीदार बनते हैं और जब प्रतिनिधि-सभा किसी राज-संस्था विशेष के बजट को स्वीकृत करके मंत्रिमण्डल या अन्य कार्यपालकों को व्यय करने का अधिकार देती है तब थातीदारी की मात्रा और भी बढ़ जाती है। इसके बाद जब वित्त-विभाग धनराशि को शासन-विभागों को व्यय करने के लिए सुपुर्द करता है तब विभागों के अध्यक्ष और निम्न कर्मचारी थातीदार के रूप में धन का व्यय करते हैं। हम आगे चलकर देखेंगे कि किस प्रकार विभागों में व्यय करने में भी थातीदारी के कितने स्तर हैं और धन का उपयोग के लिए कैसे नियंत्रण प्रणाली बनाई गई है? वित्त-विभाग की ओर से शासन-विभागों के प्रधान या अध्यक्ष थातीदार हैं, और विभागों के प्रधान या अध्यक्षों के लिए उनके नीचे निष्कासन, चुकौती और नियंत्रण के पदाधिकारी थातीदार हैं। अन्त में इन पदाधिकारियों के नीचे भी हजारों की संख्या में वे निम्नपदाधिकारी हैं जो सबसे नीचे की सीढ़ी पर करोड़ों रुपयों के व्यय के लिए ब्योरेवार निर्णय करते हैं।

इस शृंखला-बद्ध थातीदारी में प्रत्येक कड़ी का सामूहिक व्यय के लिए उत्तरदायित्व इस प्रथा के एक और गुणविशेष (*Characteristic*) के कारण बढ़ जाता है। व्यक्तिगत व्यय की तुलना में सामूहिक व्यय एक खर्चीला रास्ता है। कोई उपार्जन जब अपने लिए खर्च करता है तब उसमें प्रबन्ध-सम्बन्धी उतनी जटिलता नहीं होती। परन्तु, राजकीय व्यय में आय का रास्ता निर्धारित करना होता है। कर वसूल करने में खर्च करना होता है। उसको कोष में जमा करके रोकड़ की निगरानी तथा हिसाब के लिए कोष-विभाग चलाना होता है। उसके खर्च का बजट अनुमान बनाना होता है, बजट की स्वीकृति के बाद नियमों के अनुसार विभागों में बाँटना होता है। विभागाध्यक्ष रकमों को निम्नाधिकारियों के हाथ में सौंपते हैं जो अपने निम्न कर्मचारियों के द्वारा खर्च करते हैं। बिलों को जाँचने तथा चुकाने और उनके हिसाब रखने के लिए तथा उनके नियंत्रण के शासन पर खर्च करना होता है। खर्च करने के बाद हिसाब की जाँच अर्थात् अंकेक्षण (ऑडिट) के लिए भी एक बड़ा विभाग है जिसको चलाने में खर्च होता है। इस प्रकार व्यक्तिगत व्यय के क्षेत्र की तुलना में राजकीय व्यय के प्रत्येक पैसे के ऊपर व्यय की प्रक्रिया के खर्च का बोझ लदा रहता है। इस कारण थातीदारी की शृंखला की प्रत्येक कड़ी की जवाबदेही और भी गम्भीर हो जाती है। इसी कारण अंकेक्षण का एक विशेष और महत्त्वपूर्ण नियम और आदेश है कि गजट-जद अधिकारियों की जवाबदेही व्यय की यथाकार नियमितता (*Formal regularity*) तक ही नहीं समाप्त हो जाती; परन्तु वे उचित मितव्यय (*Economy*) के लिए भी उत्तरदायी हैं।

अन्त में एक और कारण से भी थानीदारी की जवाबदेही बढ़ जाती है। राजकीय आय के साधारणतः तीन प्रभव या जरिया हैं। पहला कर, दूसरा शुल्क और तीसरा व्यावसायिक लाभ। और ये सब कमवेश राज की बल-प्रयोग-कारिणी शक्ति के आधार पर ही वसूल किये जाते हैं। आप शायद यह दलील दे सकते हैं कि बल-प्रयोग का सिद्धान्त केवल कर में लागू होता है। परन्तु आप देखेंगे कि अन्य दोनों क्षेत्रों में भी राज के एकाधिकार (मनोपली) के कारण परोक्ष रूप में कर का सिद्धान्त कारकून रहता है। अर्थात् जिस माल या सेवा को बाजार व्यवस्था के द्वारा बेचती है, उसमें बहुधा परोक्षतः कर का अंश रहता है।

दूसरा अध्याय

व्यय का शासन

पिछले विश्लेषण से हमलोग इस नतीजे पर आते हैं कि राजकीय व्यय के विषय में हमें अर्थविज्ञान के मूल सिद्धान्तों की सहायता संकुचित मात्रा में ही मिलती है, और हमें विशेष कर उद्देश्यवादी सिद्धान्तों पर निर्भर करना पड़ता है। इसका उपसिद्धान्त या निष्कास यह होता है कि राजकीय धन-संचय तथा व्यय की प्रक्रिया में जो पग-पग पर थातीदारों के द्वारा शासन-प्रणाली का संचालन होता है। उसके कारण एक व्यापक नियन्त्रण तथा नियम प्रणाली की आवश्यकता है जिसका प्रत्येक अंग परस्पर एक दूसरे पर नियन्त्रण-प्रणाली पर एक काक-दृष्टि उनके व्योरेवार विवरण के पहले लाभदायक होगा।

हम जानते हैं कि पाश्चात्य देशों में जनराज्यात्मक संस्थाओं की उत्पत्ति प्रजा और राजा के बीच कर लगाने के अधिकार के प्रश्न पर आरम्भ हुई। और अन्त में यह मौलिक नियम सब देशों में स्थापित किया गया है कि प्रजा के प्रतिनिधि ही राजकीय व्यय के लिए धन का अनुदान कर सकते हैं। हमारे संविधान की धारा नं० ३१ (१) इसका पोषक है। इसके अनुसार—किसी व्यक्ति का धन बिना कानून के अधिकार के नहीं लिया जा सकता और धारा नं० २६५ के अनुसार कोई भी कर बिना कानून के अधिकार के नहीं लगाया जा सकता है। धारा नं० २६६ (३) के अनुसार कोई भी व्यय विधान के कानूनों के अनुसार ही हो सकेगा। इसी कारण संघ तथा राज्यों के विधान-सभाओं में कानून-निर्माण के जो नियम दिये गये हैं, वहाँ धारा नं० १०८ और १६७ के अनुसार वित्त-विषयक विधेयकों के लिए अलग प्रक्रिया रखी गई है। ये प्रक्रिया—विशेष धारा नं० १०६ तथा १६८ में दिये गये हैं जिनके अनुसार आय-व्यय सम्बन्धी विधेयक केवल लोकसभा और विधान-सभाओं में ही पेश किये जा सकते हैं। क्योंकि ये ही प्रतिनिधि सभाएँ हैं। राज्य-परिषद् और विधान-परिषदों को बजट और वित्त-विधेयकों पर चौदह दिन के अन्दर विचार करके निम्न सदनों में लौटा देना होता है। उच्च सदनों में कोई ऐसा संशोधन नहीं लाया जा सकता है, जो निम्न सदन को स्वीकृत न हो। संविधान की ११० और १६६ धाराओं में वित्त-विधेयक (Money bill) की परिभाषा निर्धारित की गई है।

परन्तु आय-व्यय का शासन या नियन्त्रण कितना जटिल है, और यहाँ थातीदारी का सवाल इसको और कितना कठिन बना देता है, इसीसे सिद्ध होता है कि इस विषय पर राज्य के किसी भी एक अंग को पूर्ण अधिकार नहीं दिया गया है। समाज के प्रजातन्त्र संगठन में प्रतिनिधि-सभा या विधान-मण्डल राष्ट्र-प्रभुता (Soverignty)

का वासस्थान है। यही संगठित राज्य-शक्ति का फ्लाई वील या शक्ति-उत्पादक चक्का है। परन्तु इस चक्के को भी किसी योजना या ध्येय के अनुसार ही चलना चाहिए। इस कारण इसपर नियन्त्रक या नियामक यन्त्र (Governor) की जरूरत होती है कि शक्ति का उपयोग नियन्त्रित रूप से हो। इसी कारण संघ के लिए ११२ से ११७ धाराओं में और राज्यों के लिए २०२ से २०७ धाराओं में राज-वित्त के विषय में कार्य-प्रणाली दी गई है जिसका उल्लंघन करके राष्ट्रशक्ति या प्रभुत्व के वासस्थान विधान-मण्डल भी कोई काम नहीं कर सकते हैं। इन धाराओं के अनुसार संघ या राज्यों में कार्यपालिका की ओर से राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा वार्षिक वित्त-विवरण (*Annual financial Statement*) विधान-मण्डलों के दोनों सदनों के सामने रखे जाते हैं। धारा ११३ (३) और २०३ (३) के अनुसार क्रमशः संघ और राज्यों में अनुदान के लिए माँग केवल राष्ट्रपति, या राज्यपाल की ओर से पेश की जा सकती है; धारा ११७ (३) और २०७ (३) के अनुसार उसी प्रकार विधान-मण्डल का कोई भी सदन किसी ऐसे विधेयक को जिससे संचित निधि से व्यय करना हो, बिना राष्ट्रपति या राज्य-पाल की सिफारिश के स्वीकृत नहीं कर सकता है। शक्तिशाली निम्न सदनों को भी अधिकार नहीं है कि वे किसी प्रकार का वित्त-विधेयक सदन में पेश कर सकें। यहाँ तक कि कोई भी व्ययात्मक विधेयक बिना वित्त-विभाग की राय से नहीं पेश हो सकता है। इसका मतलब है कि प्रतिनिधि-सभा भी तो थातीदार ही है और उसको उचित रूप से थातीदारी निबाहने के लिए उसपर भी नियंत्रण आवश्यक समझा गया है। साथ-ही-साथ राष्ट्र तो अमर या दीर्घजीवी है और उसको चलाने के लिए अनिवार्य व्यय की जनता की प्रतिनिधियों की राय से भी जोखिम में नहीं डाला जा सकता है। इस कारण ११३ (१) तथा २०३ (१) धाराओं के अनुसार बजट में प्रभृत व्यय (*Charged expenditure*) को घटाने-बढ़ाने या अस्वीकृत करने का अधिकार निम्न सदनों को भी नहीं है। वे केवल अपनी राय उसपर दे सकते हैं। और दत्तमत व्यय (*Voted expenditure*) जिसपर निम्न सदनों को वोट देने का अधिकार है, उनमें भी प्रतिनिधियों को स्वीकृत, अस्वीकृत या कमी करने का अधिकार है; परन्तु किसी माँग की रकम को वे बढ़ा नहीं सकते हैं। फिर भी, बजट स्वीकृत होने के बाद विनियोजन कानून (*Appropriation Act.*) जिसके द्वारा स्वीकृत माँग के व्यय के लिए संचित निधि (*Con solidated fund*) से पैसा निकालने का अधिकार सरकार को दिया जाता है। उसमें प्रतिनिधि-सभा एक शीर्षक का अनुदान दूसरे शीर्षक में नहीं बदल सकती। और संविधान के अनुसार आर्थिक आपत्ति-काल में धारा ३६० के अनुसार अपनी ही जवाबदेही पर वित्त-विषय में बहुत अधिकार दिया गया है।

धारा २६७ (१) और २६७ (२) के अनुसार क्रमशः संघ तथा राज्यों को अधि-कार दिया गया है कि वे संचित निधि से रकम निकाल कर आकस्मिकता निधि (*Contingency fund*) कायम करें जो राष्ट्रपति या राज्यपाल के अधिकार में रखे

जायँ और विधान-मण्डल की ओर से उचित कार्य-प्रणाली द्वारा व्यय स्वीकृत होने तथा धारा ११५ और ११६ के अनुसार संघ के लिए तथा धारा २०५ और २०६ के अनुसार राज्य के लिए इसमें से खर्च किये जायँ अर्थात् नियमित रूप से विधान द्वारा किसी आकस्मिक आवश्यक व्यय स्वीकृत होने के पहले कोई अनायास खर्च करना पड़े, वह इसी निधि से अस्थायी तौर से निकाला जायगा और विधान-मण्डलों की नियमित स्वीकृति मिल जाने पर संचित निधि से वह रकम फिर निकाल, आकस्मिक निधि (*Contingency fund*) में कर पूरा कर दिया जायगा।

संघ तथा राज्यों की सरकार धारा नं० २६६ और २६७ के तथा अन्य धाराओं के अनुसार अपनी-अपनी संचित निधि, आकस्मिक निधि तथा लोकनिधि (*Consolidated fund, Contingency fund and public account*) के स्वामी हैं। उपर्युक्त धाराओं के अनुसार विधान-मण्डलों के निम्न सदन ही अनुदान की मंजूरी संविधान में दिये गये नियमों के अनुसार कर सकते हैं तथा व्यय के लिए माँग केवल राज्यपालिका की ओर से निम्न सदनों में पेश की जा सकती है। परन्तु संविधान की १४८ से १५१ धाराओं के अनुसार समस्त राज्यों तथा संघ के आय-व्यय के लेखे तथा अंकेक्षण (ऑडिट) की जिम्मेदारी भारत के कंट्रोलर और ऑडिटर जेनरल को दी गई है जो संघ और राज्यों के अधीन नहीं है। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है, और इनके वेतन आदि में भी कोई हस्तक्षेप किसी कार्यपालिका या विधान-मण्डल द्वारा नहीं हो सकता है। कम्पट्रोलर और ऑडिटर जेनरल की जवाबदेही है कि संघ तथा सब राज्यों के आय-व्यय अन्तिम या पक्का लेखा वह राष्ट्रपति को पेश करे। इन्हीं के द्वारा आय-व्यय के शासन और नियन्त्रण के ब्योरैवार नियम, और आय, व्यय तथा बजट के फारम बनाये जाते हैं। इन्हीं विभागाध्यक्ष के अधीन राज्यों के एकाउंटेंट जेनरल इनकी ओर से राज्यों के आय-व्यय, कोष-संचालन, लेखा फारम आदि के विषय में इनकी जवाबदेही का पालन करते हैं। इस विभाग को अधिकार है कि संघ या राज्य के किसी भी कार्यालय का, जिसका आय, व्यय, कोष-संचालन या लेखा से सम्बन्ध हो, निरीक्षण करे।

अंकेक्षण के प्रशासन का मूल सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह यह है कि जहाँ कहीं भी थातीदारी के रूप में किसी व्यक्ति या संस्था को वित्त-विषयक प्रशासन करना हो, वहाँ लेखा का अंकेक्षण या आडिट ऐसे अधिकारी को देना चाहिए जो इस व्यय-प्रशासन की कार्यपालिका के अधीन न हो। यह वैसा ही सिद्धान्त है, जिसके अनुसार न्याय-विभाग को शासन-विभागों से पूर्णतया स्वतन्त्र रखने का प्रयत्न किया जाता है। ज्वाएंट-स्टाक कम्पनियों में भी संचालक-बोर्ड के (*Board of Directors*) अंशधारियों (*Share-holders*) के थातीदार हैं। इस कारण अंकेक्षकों की बहाली शेयर-होल्डरों की बैठक में उनकी ओर से की जाती है और वे अपना प्रतिवेदन या रिपोर्ट इसी शेयर-होल्डर-समिति को पेश करते हैं और संचालक बोर्ड के अधीन नहीं होते

हैं। विनियोग कानून (*Appropriation Act*) पास हो जाने पर वित्त-विभाग द्वारा तथा एकाउण्टेण्ट जेनरल द्वारा व्यय करने के अधिकार दिये जाते हैं; पर केन्द्रीय वित्त-विभाग का एक प्रशंसनीय व्यवहार है कि नये व्यय की मंजूरी होने पर भी रकम को खर्च करने के पहले फिर उसकी आवश्यकता को जाँचते हैं। वित्त-विभाग तथा विभागाध्यक्षों के द्वारा रकम निकालने, खर्च और नियंत्रण करनेवाले पदाधिकारी (*Drawing, Disbursing and controlling officers*) को सुपुर्द करने के बाद भी खजाना, एकाउण्टेण्ट जेनरल तथा विभाग के गजट-ज़द पदाधिकारियों द्वारा कैसे विविध नियन्त्रण होता है और चुकती (*Payment*) के बाद किस तरह जाँच होती है, इसका वर्णन उचित स्थान पर दिया गया है।

तीसरा अध्याय

आय-व्यय के शीर्षक (Heads)

संघ या राज्यों के सब प्रकार के आय धारा २६६ के अनुसार उनकी संचित निधि (Consolidated fund) या जन-लेखा (Public Account) में रखे जाते हैं और वहीं से धन की निकासी होती है या आकस्मिक निधि (Contingency fund) में निकाल कर रखा जाता है। परन्तु इनका हिसाब उचित और आसान नियन्त्रण के लिए निर्धारित फारमों में रखना जरूरी है। इसी कारण आय-व्यय का वर्गीकरण और उसके अनुसार फारम बनाना कम्पट्रोलर और ऑडिटर जेनरल (Comptroller and Anditor, Genral) या उनकी ओर से एकाउण्टेण्ट जेनरल की जवाबदेही निर्धारित की गई है। बिना इसकी उचित व्यवस्था के बजट-अनुमान बनाना विधान-मण्डलों में आय-व्यय समझना, विभागों या खजाने या कोषों में तथा एकाउण्टेण्ट जेनरल के यहाँ उचित हिसाब का रखना या आय तथा व्यय का मासिक विवरण (Return) बनाना, कोषों की बराबर स्थिति समझते रहना, राज्य की वित्तीय स्थिति लेखा के क्रमशः योग (Progressive Total) के आधार पर समझना और यथोचित कार्रवाई करना असम्भव होगा। इनके बिना हिसाब की जाँच या आडिट नहीं हो सकता है।

संचित निधि (Consolidated fund) के हिसाब तीन मुख्य विभागों में रखे जाते हैं। जैसे—

१. *आय-व्यय का शीर्षक (Revenue and Expenditure Head)।*

२. *पूँजी-सम्बन्धी आमद और चुकौती (Capital Receipts and disbursements)।*

३. *सार्वजनिक ऋण, उधार या दादनी (Public Debt, Loans and advance)।*

इसी प्रकार जन-लेखा (Public Account) के निम्नलिखित विभाग हैं :—

१. *ऋण या जमा का शीर्षक (Debt and Deposit Head)।*

२. *रवानगी का शीर्षक (Remittance Head)।*

इसके अलावा आय-व्यय के बजट अनुमान के लिए तथा लेखा के लिए जो शीर्षक निर्धारित हैं, वे अधिक काम के हैं, और इनकी प्रत्येक पदाधिकारी को व्यवहार में लाना होता है। विविध आयों के लिए अलग-अलग और विविध व्ययों के लिए भी अलग-अलग मुख्य शीर्षक (Major Head) जिनकी क्रमशः संख्या भी निर्धारित हैं; बनाये गये हैं। प्रत्येक मुख्य शीर्षक भिन्न-भिन्न गौण (या निम्न) शीर्षकों (Minor

Heads) में बाँटे गये हैं और प्रत्येक गौण शीर्षक के नीचे उपशीर्षक (*Sub-Heads*) होते हैं। फिर प्रत्येक उपशीर्षक को प्राथमिक मदों (*Primary Units*) में बाँटा गया है तथा इनके नीचे ब्योरेवार मद (*Detailed Heads*) रहते हैं। किस विभाग की आय या व्यय का ब्योरा किस प्रकार किन-किन मदों या शीर्षकों में रखा जायगा, इनके साथ निर्धारित हैं।

इन शीर्षकों को बढ़ाने-घटाने का अधिकार केवल एकाउण्टेण्ट जेनरल को है, और शासन-विभागों की आवश्यकता के अनुसार नये छोटे या बड़े शीर्षक कायम किये जाते हैं। परन्तु इनमें फेर-बदल या बढ़ाव-घटाव बहुत सोच-विचार कर करना पड़ता है। शीर्षकों की संख्या सीमित रखने की जांच में तो समय कम लगेगा; परन्तु ब्योरेवार हिसाब का उचित नियन्त्रण नहीं हो सकेगा। इसी तरह शीर्षकों की संख्या बहुत बढ़ा देने से हिसाब तो और ब्योरेवार रखा जा सकेगा; परन्तु जांच में अधिक परिश्रम करना होगा। अधिकतर यह ध्यान में रखा जाता है कि ब्योरेवार मदों का बाहुल्य न हो। परन्तु इस नीति का एक यह भी फल है कि ब्योरेवार व्यय पर नियन्त्रण और आय को दर्ज करने की जवाबदेही निम्न अधिकारियों पर और अधिक बढ़ जाती है।

यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि विविध फारमों और शीर्षकों को ठीक से समझने, फारमों के व्यवहार में मितव्यय और लेखे के निर्धारित नियमों के अनुसार फारमों की खानापूरी और उनकी जांच कर गजटजद पदाधिकारियों का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है।

चौथा अध्याय

बजट-निर्माण और आय-व्यय का संतुलन

बजट की आवश्यकता

व्यय के उचित प्रबन्ध के लिए, चाहे वह किसी खास आयोजन के लिए हो अथवा अवधि-विशेष के लिए हो, आय तथा व्यय के ब्योरे का यथाशक्ति सही अनुमान आवश्यक है। साधारण बजट एक वर्ष की अवधि के लिए बनाया जाता है। इसका मुख्य ध्येय आय और व्यय को संतुलित करना है। परन्तु बजट-निर्माण के अन्य भी कई ध्येय हैं। जब यूरोप में बजट की पद्धति आरम्भ हुई, तब उसका मुख्य ध्येय था कि इसके द्वारा राजाओं के अनियन्त्रित अधिकार पर नियन्त्रण हो और बिना जनता के प्रतिनिधियों की स्वीकृति के राजा न तो मनमाना कर लगा सके और न मनमाना व्यय कर सके। इसके भी पहले बजट तथा ऑडिट की उत्पत्ति हम सामन्तशाही काल के राजाओं तथा सामन्तों के वार्षिक हिसाब या लेखे में पाते हैं। धीरे-धीरे जैसे-जैसे राजकीय आय-व्यय में वृद्धि होती गई और बजट निर्माण की पद्धति का विकास होता गया, बजट के अन्य लाभ भी दृष्टिगत होने लगे। आजकल तो बिना बजट के किसी प्रकार के शासन का हम अनुमान भी नहीं कर सकते।

अब तो बजट बनाने की आवश्यकता अन्य कई कारणों से भी आ पड़ती है। बजट के द्वारा हम आय का तथा व्यय का अनुमान करके दोनों के बीच संतुलन करने का प्रयास करते हैं। व्यय का अतिरेक (*Excess*) होने पर व्यय पर संयम, कर-वृद्धि या नये कर-द्वारा या ऋण-द्वारा आय बढ़ाने का उपाय करते हैं। बजट की दूसरी प्रशासी (*Administrative*) आवश्यकता यह है कि इसके शीर्षक, उपशीर्षक आदि के ब्योरे के अनुसार व्यय का तथा आय का भी, लेखे (*Accounts and Returns*) के द्वारा प्रशासन होता है और लेखे के द्वारा देखा जाता है कि व्यय स्वीकृत बजट के अनुसार हो रहा है। बजट की संविधानीय आवश्यकता यह है कि बिना इसके ब्योरे के प्रतिनिधि या विधान-सभाओं में व्यय के लिए अनुदान की माँग या वित्त-विधेयक द्वारा नई आय के लिए माँग, राज्यपालिका की ओर से, नहीं पेश की जा सकती और न वार्षिक वित्त-विवरण विधान-मण्डलों के दोनों सदनों के सामने रखी जा सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बजट-प्रणाली जनतन्त्र-शासन का प्रमुख औजार है।

अन्त में यहाँ पिछले अध्यायों के विश्लेषण का भी व्यवहार करके हम देखते हैं कि राजकीय वित्तशास्त्र में भी शासकों के सामने अर्थविज्ञान की प्रधान समस्या सामने आ जाती है। यहाँ सीमित धन को असीमित आवश्यकताओं के बीच इस ध्येय से

बाँटना होता है कि इस व्यय-व्यवस्था से अधिकाधिक उपयोगिता या लाभ प्राप्त हो। बजट-निर्माण इसका भी साधन है।

बजट-निर्माण की प्रणाली

बजट के शीर्षक, फारम और बनाने की प्रणाली कम्पट्रोलर और ऑडिटर जेनरल तथा राज्यों के एकाउण्टेण्ट जेनरल द्वारा बनाये गये और सरकार से स्वीकृत नियमों द्वारा निर्धारित हैं। राज्य के प्रत्येक विभाग के गजट-जद अधिकारी (Gazetted officers) एकाउण्टेण्ट-जेनरल के तथा सरकार के उत्तरदायी की हैसियत से अपने-अपने कार्यालय तथा अधीन कार्यालयों के निष्कासन, चुकौती और नियन्त्रण के पदाधिकारी (Drawing, Disbursing and Controlling officer) भी हैं तथा बजट निर्माण के लिए ये अनुमानक अधिकारी (Estimating officer) भी हैं। ये अपने यहाँ के बँधे खर्च का (Recurring expenditure), जिसमें नियमित वार्षिक वेतन वृद्धि के लिए व्यय भी शामिल है, निर्धारित फारम से निर्धारित शीर्षकों में अनुमान (Estimate) तैयार करके अमुक तारीख तक अपने विभाग के अध्यक्ष (Departmental Head) के यहाँ भेजते हैं। साथ ही, ये इसी प्रकार अपने विभागीय आय (Departmental receipts) का भी अनुमान भेजते हैं। इन फारमों में अलग-अलग खाने बने हैं, जिनमें विगत वर्ष के वास्तविक या पक्के अंक (Actuals), गत वर्ष के स्वीकृत आय-व्यय के अंक, चालू साल के पुनरावृत्त अनुमान (Revised estimate) तथा बजट-साल (आगामी साल) के बजट अनुमान के अंक रहते हैं। इन अनुमानक पदाधिकारियों की जिम्मेदारियाँ बहुत कड़ाई के साथ निश्चित हैं। अनुमान की खानापूरी नियमानुसार उचित फारम में होनी चाहिए। अनुमान में जहाँ तक आँकड़े (Data) प्राप्त हों, सभी होने चाहिए तथा इनको निश्चित तारीख तक विभागाध्यक्ष के यहाँ पहुँच जाना चाहिए। ये जिम्मेदारियाँ व्यक्तिगत होती हैं। अनुमानक पदाधिकारी किसी गलती को किसी अधीन कर्मचारी के मत्थे नहीं मढ़ सकते। अब विभाग के अध्यक्ष को इनका संकलन कर इस विभागीय बजट की एक प्रति वित्तविभाग (Finance Department) में और एक प्रति राज्य के एकाउण्टेण्ट जेनरल को पहली अक्टूबर तक पहुँचाना होता है। इसके बाद इनकी जाँच वित्त-विभाग और एकाउण्टेण्ट जेनरल के परस्पर सहयोग से होता है। यदि कोई अंक शंकाप्रद या नाजायज मालूम होता है, तो बजट-स्लिप के द्वारा इस बात की सफाई विभागाध्यक्ष से ले ली जाती है।

इस प्रकार छानबीन करके विविध विभागों के बजट-अनुमानों का संकलन सरकार के बजट-अनुमान के प्रथम संस्करण के रूप में वित्त-विभाग द्वारा किया जाता है।

इस बजट के प्रथम संस्करण में सिर्फ आय के पूर्व से स्वीकृत संसाधन और व्यय के स्थायी मद (Standing charges)—चाहे वे प्रभृत (Charged) हों या मतदत्त (voted) हों—दिये जाते हैं। बजट के प्रथम संस्करण में व्यय या आय का कोई

नया मद, जो गत साल न था, नहीं दिया जाता है। चाहे कोई योजना किसी विभाग की सरकार से स्वीकृत भी हो गई हो और वित्त-विभाग ने भी उसके ऊपर खर्च स्वीकार कर लिया हो, तो भी यह मद बजट अनुमान के प्रथम संस्करण में नहीं आ सकता है।

इस व्यवहार और नियम के कई गम्भीर समर्थक कारण हैं। यदि एक ही बजट-संस्करण में पुराने आय-व्यय के मदों के बीच जहाँ-तहाँ एकाध नये कर या व्यय के मद घुसा दिये जायँ तो बजट-अनुमान के हजारों मदों के बीच इनको पकड़ना, विधान-सभाओं में जनता के प्रतिनिधियों के लिए, असम्भव होगा। इसी दुरुपयोग को असम्भव बनाने के लिए बजट विषयक यह नियम और व्यवहार सब जगह प्रचलित है कि किसी भी नये कर के लिए अथवा पुराने कर में वृद्धि के लिए या व्यय के किसी भी नये मद या आयोजन के लिए सरकार को विधान-सभा में बजट के द्वितीय संस्करण (Second edition) में अलग से, प्रत्यक्षरूप से, माँग पेश करनी पड़ती है।

तो बजट का द्वितीय संस्करण हमारी दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। वित्त-विषयक किसी नये प्रस्ताव के लिए कार्य-क्रिया यह है कि विभाग के अध्यक्ष (Departmental Head) अपने नये प्रस्ताव उस विभाग की सरकार अर्थात् प्रशासक विभाग (Ministry) को देते हैं। इस प्रस्ताव में प्रस्तावजनित व्यय तथा आय का साफ-साफ हिसाब देना पड़ता है। प्रस्ताव के व्यय-विवरण में आवर्त्ती तथा अनावर्त्ती व्यय (Recurring and non-recurring) को दिखलाना पड़ता है; प्रारम्भिक तथा अन्तिम (Ultimate) और औसत (Average) वार्षिक व्यय के अनुमान के साथ तात्कालिक बजट वर्ष में अनुदान की माँग दिखाई गई रहती है। विभाग के मंत्री की मंजूरी प्रस्ताव के लिए मिल जाने पर इसके लिए वित्त-विभाग की मंजूरी की आवश्यकता इसलिए होती है कि यह मालूम हो जाय कि प्रस्तावगत आयोजना के लिए व्यय सम्भव है या नहीं। बहुत-से स्ताव ऐसे भी होते हैं जो विभाग के मन्त्री की स्वीकृति तक ही रह जाते हैं, जिसका अर्थ है कि विभाग की सरकार की दृष्टि में प्रस्ताव वांछनीय और हितकारी है; परन्तु इस पर व्यय के लिए वित्त-विभाग से धन मिलने की आशा नहीं होती। अन्य ऐसे प्रस्ताव भी होते हैं जो वित्त-विभाग तक पहुँच तो जाते हैं; परन्तु इस विभाग की दृष्टि में प्रथम वर्ग की आवश्यकता के वे नहीं होते या इनके धन हस्तगत नहीं होते। ऐसे प्रस्तावों पर वित्त-विभाग की आज्ञा होगी कि धन हस्तगत होने तक ये प्रस्ताव विमर्शाधीन होंगे अथवा इन प्रस्तावों को अन्य नये प्रस्तावों के साथ विचाराधीन रखा जायगा।

इस प्रकार काट-छाँट पार करते हुए कुछ ऐसे प्रस्ताव होंगे जो वित्त-विभाग की दृष्टि में आवश्यक जँचे हैं और इनपर व्यय के लिए वित्त-विभाग की स्वीकृति मिल चुकी है। इसके अलावा विभागों के अन्य प्रस्तावों पर विचार करके हस्तगत धन के अनुसार उनमें से जो अधिक आवश्यक तथा हितकर समझे जाते हैं, वे मन्त्रि-मंडल चुने जाते हैं। इन स्वीकृत प्रस्तावों के योजना-लेख (Schedules) विभागों के

अध्यक्ष (Departmental Heads) वित्त-विभाग को पेश करते हैं। इनमें वित्त-विभाग से अनुमोदित रकम के साथ स्वीकृति के आज्ञापत्र की संख्या तथा प्रस्ताव का सारांश रहता है। योजना-लेख भी विभागों की ओर से वित्त-विभाग को पहली अक्तूबर तक मिल जाने चाहिए।

और अगर विगत तीन वर्षों के पक्के हिसाब (Actuals) से किसी व्यय की रकम असाधारण कारणों से बढ़ी हो, तो उसे भी द्वितीय संस्करण में ही इसलिए देते हैं कि विधान-सभा की खास दृष्टि उसपर पड़े।

इसके अलावा, ऐसी आयोजनाओं के व्यय भी, जिनकी मंजूरी स्थायी नहीं है; किन्तु जिनकी वार्षिक स्वीकृति होती है, द्वितीय संस्करण में दिये जाते हैं। वार्षिक स्वीकृति की पद्धति का यह अर्थ है कि इन आयोजनाओं को स्थायी रूप में आवश्यक नहीं समझा गया है या इनका स्थायी आर्थिक बोझ लेने के लिए सरकार तैयार नहीं है।

परन्तु, ऐसी योजनाएँ, जिनको गत वर्ष पूरक (Supplementary) या प्रतीक (Token) द्वारा चालू किया गया था, यदि स्थायी आयोजनाओं में से हों, तो वे बजट-अनुमान के प्रथम संस्करण में दी जाती हैं।

इस प्रकार जब बजट का द्वितीय संस्करण भी तैयार हो जाता है, तब नये प्रस्तावों और योजना-लेखों (Schedules) पर विभाग तथा एकाउण्टेण्ट जेनरल विचार करते हैं कि स्थायी व्ययों को पूरा करने के पश्चात् कितनी आय की रकम इन नई योजनाओं के लिए बचती है और विविध योजना-लेखों के बीच किस प्रकार प्राथमिकता (Priority) देकर इस रकम का वितरण किया जाय ? ऐसी हालत में कि इस रकम के वितरण के बाद भी यदि कुछ आवश्यक आयोजनाएँ शेष रह जायँ तो किस प्रकार आय की वृद्धि की जाय—इसका उल्लेख आगे होगा।

अन्त में बजट के दोनों संस्करणों को इकट्ठा करके सिविल बजट अनुमान (Civil Budget estimate) के नाम से मंत्रि-मण्डल के सामने पेश किया जाता है। इसके बाद भारत-सरकार में राष्ट्रपति की ओर से और राज्यों में राज्यपाल या राज-प्रमुख की ओर से ये वार्षिक वित्त-विवरण (Annual financial estimate) के रूप में विधान-सभाओं के दोनों सदनों के सामने रखे जाते हैं।

जब यह निम्न सदन के सामने रखा जाता है, तब यह बजट का प्राथमिक निर्गम (Primary Issue of the Budget) कहलाता है और जब विधान-मण्डल से माँग के अनुदान के रूप में यह स्वीकृत हो जाता है, तब इसे बजट का पक्का निर्गम (Final Issue of the Budget) कहते हैं।

बजट को अनुदान की माँग के रूप में वित्त-मंत्री निम्न सदन में पेश करते हैं। अधिकतर एक विभाग की माँग एक अनुदान संख्या में रहती है। बजट को पेश करने के सतरह दिन बाद प्रत्येक माँग पर बहस आरम्भ होती है। सब माँगों पर बहस पन्द्रह दिन के भीतर समाप्त होनी चाहिए और किसी एक माँग पर दो दिन से अधिक

बहस नहीं होनी चाहिए। पन्द्रहवें दिन पाँच बजे अपराह्न को बहस मुखबन्ध (*Guillotine*) द्वारा समाप्त की जाती है और यदि ऐसी माँगें भी बच जायँ, जिन पर बहस न हो सकी हों, तो वे भी स्वीकृत समझी जाती हैं। इस विषय में विधान-मण्डलों के क्या अधिकार हैं और कार्यपालिका के क्या अधिकार हैं, उन्हें हम देख चुके हैं।

वित्त-सम्बन्धी विधेयकों पर उच्च सदनों के अधिकार बहुत संकीर्ण हैं। निम्न सदनों से पारित होने के बाद वे उच्च सदनों में भेजे जाते हैं; परन्तु उन्हें चौदह दिन के अन्दर अपनी सिफारिशों के साथ विधेयक को लौटा देना होता है। उनकी सिफारिशों को मानना या न मानना निम्न सदनों का अधिकार है। यदि चौदह दिन के अन्दर उच्च सदन से विधेयक न लौटे तो जिस रूप में वह निम्न सदन से स्वीकृत हुआ, उसी रूप में वह पारित या पास समझा जाता है।

यदि कोई नया कर लगाना हो या पुराने किसी कर में वृद्धि करनी हो तो सरकार को इन प्रस्तावों को अलग वित्त-विधेयक (*Finance Bill*) के रूप में निम्न सदन में पेश करना होता है।

अब हमें देखना है कि अनुदानों की माँगों की स्वीकृति मिल जाने से ही व्यय करने का अधिकार सरकार को नहीं हो जाता है। सब राजकीय आय संचित कोष (*Consolidated fund*) में राज्य की कार्यपालिका के नाम में जमा किया जाता है। अब अनुदान के अनुसार उनको निकालने के लिए विनियोग ऐक्ट (*Appropriation Act*) की जरूरत होती है। यह विनियोग (*Appropriation*) ठीक स्वीकृत अनुदान के अनुसार होना चाहिए। विनियोग एक्ट के द्वारा स्वीकृत अनुदान में कोई भी अदल-बदल करने का अधिकार लोक-सभा या विधान-सभा को नहीं है।

पाँचवाँ अध्याय

व्यय-सम्बन्धी असाधारण स्थितियाँ

स्वीकृत आय तथा व्यय के मिलान में समय-समय पर कई प्रकार की कठिनाइयाँ आ सकती हैं, जिनको हल करने के लिए भी नियम बनाये गये हैं।

लेखानुदान (*Vote on Account*) की व्यवस्था

हम जानते हैं कि बजट द्वारा अधिकृत (*authorised*) व्यय और विनियोग ऐक्ट (*Appropriation Act*) द्वारा निकासी के लिए स्वीकृत धन की अवधि ३१ मार्च तक रहती है। परन्तु नये वित्तीय वर्ष (*Financial year*) के लिए बजट की स्वीकृति तथा विनियोग ऐक्ट के पास होने में, तथा उनको विभागों को सौंपने में समय लगता है। इस कारण पहली अप्रैल से इस अवधि में राजकीय खर्च चलाने के लिए संविधान की ११६ धारा तथा २०६ धारा से क्रमशः संघ तथा राज्यों के निम्न सदनों को अधिकार देती है कि वे इस अवधि में खर्च चलाने के लिए सरकार को लेखानुदान (*Vote on account*) द्वारा धन की मंजूरी दें।

अनुपूरक बजट की आवश्यकता

हम देख चुके हैं कि विभागों से सितम्बर के अन्त तक आगामी साल के अप्रैल से होनेवाले व्यय के अनुमान भेजे जाते हैं। परन्तु इतनी आय के अनुमान तथा व्यय की वास्तविकता में बहुत अन्तर हो सकता है। अनुमान के समय तथा वास्तविक व्यय के समय के बीच बहुत से नये कारक आ सकते हैं, जिनके कारण व्यय की वृद्धि या आय की कमी हो सकती है। आय-व्यय की क्रमागत मासिक स्थिति विभागाध्यक्षों के और जिला कोषाध्यक्षों के मासिक व्यय और आय-विवरणों (*Monthly returns*) से जानी जाती है जो ऐकाउण्टेण्ट जेनरल के पास बराबर भेजे जाते हैं। ऐकाउण्टेण्ट जेनरल शीर्षकानुसार मासिक प्रगामी लेखा (*Monthly return of expenditure*) तैयार करके वित्त-विभाग को देते हैं और स्वयं भी उनके अनुसार यथोचित कार्रवाई करते हैं। इन्हीं प्रगामी (*Progressive*) लेखे के अनुसार आगामी साल के बजट के साथ-साथ चालू वर्ष के बीते छः महीनों का संशोधित बजट-अनुमान (*Revised Budget Estimate*) भी अक्टूबर में दिया जाता है। यदि इन बीते महीनों में आय-व्यय के आँकड़ों से पता चला कि अनुमानित बजट के मिलान से व्यय आय से कम हो रहा है तो कोई कठिनाई नहीं होती है। परन्तु कहीं आय में कमी या व्यय में वृद्धि के कारण अनुमानित रकम के मिलान से ऋणात्मक विषमता निकली तो आय और व्यय को संतुलित करने के लिए विविध उपाय किये जाते हैं।

हम देख चुके हैं कि बजट-अनुमान तथा व्यय करने के लिए अनुदान (*Appropriation*) की स्वीकृति प्रत्येक विभाग या कभी-कभी एकाधिक विभागों के लिए भी, अलग-अलग अनुदान (*Grants*) और मुख्य शीर्षकों में दी जाती है और एक अनुदान की कमी दूसरे की बचत से सरकार द्वारा पूरी नहीं की जा सकती है। इस कारण यदि आय-व्यय में विषमता व्यय के सम्पूर्ण योगफल में न हो, तो एक मुख्य शीर्षक (*Major Head*) या गौण शीर्षक (*Minor Head*) आदि की कमी दूसरे की बचत से पुनर्विनियोग (*Reappropriation*) द्वारा पूरी करके बजट में संतुलन लाया जा सकता है। यह व्यवस्था बजट-संतुलन के लिए बहुत आवश्यक है। परन्तु इसके लिए यदि व्यापक अधिकार कार्यपालिका को दे दिया जाय तो इससे विधान-मण्डलों का नियन्त्रण कमजोर हो जायगा। इस कारण जिन-जिन मदों के बीच पुनर्विनियोग हो सकता है, उसके नियम बजट-मैनुअल में दिये गये हैं। उप-शीर्षकों के भीतर विभाग की सरकार या अन्य अधिकारी, जिनको इसके लिए सरकार द्वारा अधिकृत किया गया हो, पुनर्विनियोग कर सकते हैं। दो मुख्य शीर्षकों के बीच पुनर्विनियोग वित्त-मंत्री की आज्ञा से ही किया जा सकता है। दो अनुदानों (*Grants*) के बीच पुनर्विनियोग नियमविरुद्ध है; क्योंकि इससे विधान-मण्डलों में जनता के प्रतिनिधियों के अधिकार में हस्तक्षेप होगा। इसी कारण पुनर्विनियोग का एक यह भी गम्भीर नियम है कि इसके द्वारा किसी भी आवर्तक (*Recurring*) व्यय का दायित्व नहीं उठाया जा सकता है। इस कारण प्रतीक या सूचक माँग (*Token demand*) को पुनर्विनियोग की पद्धति का पूरक समझना चाहिए।

बजट की भीतरी बचत द्वारा बजट में संतुलन लाने का दूसरा तरीका प्रतीक या सूचक माँग (*Token demand*) है। इसकी विशेषता यह है कि वित्त-मंत्री को इसके लिए प्रतिनिधियों के सामने माँग पेश करनी होती है। यह माँग केवल सूचना और अनुमोदन के लिए पेश की जाती है; क्योंकि रकम तो बचत में प्राप्त है ही। इसकी आवश्यकता इस वास्ते होती है कि अनुदान के लिए माँग पेश करना न भी हो, तो भी सूचक माँग (*Token demand*) द्वारा जन-प्रतिनिधियों का ध्यान इस नये व्यय की ओर आकर्षित किया जाता है और दिखलाया जाता है कि अनुदान का पूर्ण अधिकार निम्न सदन को ही है।

यदि यह नया व्यय अधिक रकम का हो, जिससे समूची रकम के लिए वित्त-मंत्री को विधान-सभा के सामने जाना पड़े, तो यह अनुपूरक माँग (*Supplementary Demand*) कहलाता है। इसका नियम है कि इसके लिए विभागों से माँग वित्त-विभाग के पास १५ फरवरी तक आ जानी चाहिए। अधिकतर इसमें ऐसी नइ योजनाएँ आती हैं जो प्रधान बजट के समय दृष्टि में न थीं।

अनुपूरक माँग की प्रथा की सहायता तथा बजट संतुलन के लिए आवंटन (*Allotment*) में बचत (*Savings*) के समर्पण (*Surrender*) के लिए

नियम बनाये गये हैं। वित्त-वर्ष के अंतिम हिस्से में प्रत्येक गजटजद पदाधिकारी को अपने कार्यालय में अनुभूत या दृष्टिगत बचत की सूचना समर्पण (Surrender) के रूप में देनी होती है। इनके आधार पर प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष का कर्तव्य है कि वे १५ वीं फरवरी तक अपनी अनुपूरक माँग के साथ-साथ अपनी बचत के समर्पण (Surrender) को भी वित्त-विभाग तथा एकाउंटेंट जेनरल के पास भेज दें। इसका अभिप्राय है कि वित्त-विभाग तथा एकाउंटेंट जेनरल को मालूम हो जाय कि किसी अनुपूरक माँग का कितना हिस्सा बचत से निकल जायगा। और, इसी कारण यह भी एक महत्त्वपूर्ण नियम है कि कोई भी गजट-जद पदाधिकारी यदि अपने आवंटन (Allotment) से एक पैसा भी निकाल कर ३१ मार्च के बाद व्यय करने के लिए चाहे तो यह बहुत नाजायज समझा जायगा। इधर इस नियम का बहुत उल्लंघन हो रहा है।

इन सब व्यवस्थाओं के बाद भी यह सम्भव है कि भारत-सरकार या किसी राज्य को ऐसी घटना का सामना करना पड़े कि एकाएक कोई व्यय विशेष अनिवार्य हो जाय। ऐसी-ऐसी परिस्थितियों का सामना करने के लिए संविधान ने संघ तथा राज्यों को सुविधा दी है कि वे अपने-अपने लिए आकस्मिक निधि (Contingency fund) की स्थापना कर सकते हैं। कोई भी आकस्मिक व्यय इसी निधि से किया जाता है, और जब इस व्यय की नियमित स्वीकृति विधान-मण्डल से मिल जाती है तब यह रकम संचित निधि से निकाल कर आकस्मिक निधि में पूरित कर दी जाती है।

इन सब उपयोगों के बाद भी यदि व्यय आय से अधिक हो जाय तो उसके लिए कर-वृद्धि या नये करों द्वारा आय बढ़ाने, व्यय घटाने या तत्काल ऋण लेने के साधन व्यवहार में लाये जाते हैं।

छठा अध्याय

बजट तथा आय-व्यय पर जनता के प्रतिनिधियों के नियन्त्रण की यथार्थता

निम्न विधान-सदन जनता के पैसे का थातीदार होने की हैसियत से अनुदानों की माँग को स्वीकृत करता है और विनियोग ऐक्ट (*Appropriation Act*) पास करता है। परन्तु यह नियन्त्रण तो वर्ष में एक बार सतरह दिन के लिए होता है और उसमें इतनी शीघ्रता के साथ काम होता है कि बजट की ब्योरेवार जाँच-पड़ताल या छानबीन असम्भव है। इस कारण हमें यहाँ देखने की जरूरत है कि निम्न विधान सदनों की थातीदारी द्वारा आय-व्यय पर जनता के नियन्त्रण में कितनी यथार्थता है और कितना सिर्फ यथाचार (*Formality*) है।

विधान-मण्डल के सदनों की बजट-बैठक की अवधि में साधारण वाद-विवाद के अलावा कोई खास रचनात्मक नियन्त्रण या हेर-फेर कठिन है। इसके कई कारण एक गम्भीर संविधानीय कारण यह है कि बजट अनुमान कार्यपालिका (सरकार) या मन्त्रिमण्डल की ओर से राज के मुख्य कार्यपालक के नाम पर पेश होता है। इस कारण विधान-मण्डलों में मन्त्रि-दल के सदस्यों का बजट या इसके अंश-विशेषों पर कोई आपत्ति हो तो उसपर हल्की आलोचना के अलावा और कुछ नहीं कर सकते हैं। इनकी ओर से कोई उग्रकार्यवाही उनके दल की सरकार पर अविश्वास का मत समझा जायगा और ऐसी हालत में मन्त्रि-मण्डल को पदत्याग करना पड़ेगा। विरोधी दल के सदस्य भी मीठी या कड़ी आलोचना के अलावा कुछ नहीं कर सकते हैं।

दूसरी बात है कि बजट-निर्माण जटिल और प्रावैधिक (*Technical*) काम है, और खुली बैठक में इनके ब्योरे पर सीमित अवधि में उचित विचार करके कोई संशोधन देना असम्भव है।

तीसरे, हम देख चुके हैं कि खुली बैठक में बजट के भीतर संशोधन के लिए संविधान की धाराओं के अनुसार गुंजाइश बहुत ही सीमित है। बजट की रकम का बहुत बड़ा हिस्सा, प्रायः अर्धांश, प्रभृत व्यय (*Carged expenditure*) के लिए होता है जिसमें राष्ट्र के अस्तित्व के लिए अनिवार्य व्यय आते हैं। बजट के इस अंश पर विधान-मण्डल में मतदान की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती है।

इन सब कारणों से विधान-मण्डल के सदनों में बजट पेश हो जाने के बाद प्रत्यक्ष रूप से कोई गम्भीर संशोधन सम्भव नहीं है। इसी कमजोरी को दूर करने के लिए बजट पेश होने के पहले ही उसमें जाँच-पड़ताल और परिमार्जन के उपायों का विकास

हुआ है। सब देशों की विधान-सभाएँ अपने नियन्त्रण-अधिकार को सार्थक तथा यथार्थ बनाने के लिए कार्य-प्रणाली बनाई हैं और बजट-अनुमान की ब्योरेवार जांच-पड़ताल, इनके पेश होने के पहले ही, विधान-मण्डल की कमिटियों द्वारा की जाती है। इस कमिटी-प्रणाली का एक और भी बड़ा लाभ है। संविधान या परम्परा द्वारा विधान-मण्डलों के उच्च सदनों का वित्त-सम्बन्धी कार्य-प्रणाली पर बहुत ही सीमित अधिकार है। परन्तु बहुत देशों में उच्च सदन बहुत प्रभावशाली हैं या उनमें बहुत से प्रभावशाली तथा योग्य व्यक्ति सदस्य होते हैं, जिस कारण उच्च सदनों की सहायता से बजट के सम्बन्ध में बहुत ठोस काम हो सकता है। गत महायुद्ध के पहले फ्रांस, जर्मनी तथा संयुक्तराष्ट्र (अमेरिका) में बजट के ब्योरेवार जांच का काम स्थायी कमिटियों (*Standing Committees*) द्वारा किया जाता था। फ्रान्स के दोनों सदनों की दो कमिटियाँ तो इतने व्यापक रूप से बजट अनुमान के भीतर जाती थीं कि वित्त-मन्त्री से गम्भीर मुठभेड़ हो जाया करती थी। संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) के निम्न सदन की कमिटी में ३५ सदस्य होते थे और ये दस उपकमिटियों में बँट कर अत्यन्त ब्योरेवार जाँच करके लम्बी रिपोर्ट देते थे। ब्रिटेन में अनुमान कमिटी (*Estimates Committee*) सन् १८८८ से चली आती है। भारत के संविधान में इसके लिए कोई धारा नहीं है, और न कोई इसका उपबन्ध सन् १९१९ और सन् १९३५ के संविधान में था। फिर भी यहाँ के विधान-मण्डल ने मौण्टफोर्ड रिपोर्ट के २३५ और २८५ परिच्छेदों की सिफ़ारिश के आधार पर स्वयं स्थायी वित्त-कमिटियों को कायम किये थे। मौन्टफोर्ड रिपोर्ट की सिफ़ारिश थी कि इन कमिटियों के काम केवल सलाहकारी होंगे और केन्द्रीय विधान-सभा में तो इनका काम प्रान्तों की अपेक्षा और सीमित होगा। परन्तु विशेष कर केन्द्रीय विधान-सभा की कमिटी ने कभी इसको स्वीकार नहीं किया और अपने अधिकार के लिए दबाव जारी रखा। साइमन कमीशन की रिपोर्ट में हम कई प्रान्तीय कमिटियों के कामों की बहुत तारीफ़ पाते हैं।

भारत के वर्तमान संविधान की स्थापना के पहले स्थायी वित्त-कमिटियाँ आठ-आठ सदस्यों की होती थीं, जिनके सभापति वित्त-मन्त्री और सेक्रेटरी वित्त-सेक्रेटरी होते थे। अगर यथेष्ट काम होता था तो कमिटी प्रत्येक महीने के अन्तिम मंगलवार को बैठती थी और कोई भी नई योजनाएँ—विशेष कर जिनमें एक लाख से ऊपर आवर्तक (*Recurring*) या पाँच लाख से ऊपर अनावर्तक (*Non-recurring*) व्यय का अनुमान होता था—कमिटी के सामने लाई जाती थीं। बहुधा वित्त-विभाग की आज्ञा के अनुसार इन प्रस्तावों के साथ कमिटी के लिए ख़ास स्मारकपत्र (*Memorandum*) दिये जाते थे। अब नये संविधान के आने के बाद पुरानी वित्त-कमिटियाँ नहीं बनती हैं। इनकी जगह में संघ की विधान-सभा की ओर से अनुमान-समितियाँ (*Estimates Committees*), जिनके विषय में विचार पहले भी कई बार हुए थे,

बनाई जाती हैं। परन्तु राज्यों में पुराने प्रकार की कमिटियाँ भी बन्द हो गईं और अनुमान-समितियाँ (*Estimate Committees*) भी नहीं बनती हैं। यह एक बड़ी भारी त्रुटि है, विशेष कर इस अवस्था में जब कि व्यय की रकम में इधर कई गुना वृद्धि हो गई है।

हम देख चुके हैं कि जनता के प्रतिनिधियों की यह जवाबदेही है कि वे देखें कि—(१) बिना उनकी स्वीकृति के कोई कर नहीं लगे, (२) बिना उनकी स्वीकृति के कोई व्यय नहीं हो और (३) संघ या राज्य की कार्यपालिका बजट में और विनियोग नियम (*Appropriation Act*) में दी हुई स्वीकृति के अनुसार ही ठीक-ठीक खर्च करे। अब हमें देखना है कि विधान-सभाएँ अपने तीसरे कर्तव्य का किस प्रकार पालन करती हैं।

इसको देखने के लिए विधान-सभाएँ सार्वजनिक खाता-समिति (*Public Accounts committee*) बनाती आती हैं। साइमन रिपोर्ट में इन कमिटियों के सदस्यों की कर्तव्यपरायणता की बहुत तारीफ की गई है। ये कमिटियाँ संघ तथा राज्यों में अब भी कायम रखी गई हैं। नई सभा की पहली बैठक में ऐसी समिति बनाई जाती है तथा सभा की अवधि तक इसकी भी अवधि होती है; क्योंकि इसके काम भी बहुत प्राविधिक हैं और प्रतिवर्ष इसमें अदल-बदल करने से काम में शृंखला नहीं रहेगी

इसी समिति के सामने कम्पट्रोलर या एकाउंटेंट-जेनरल के तीन प्रलेख प्रति-वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में पेश किये जाते हैं। ये हैं—(१) विनियोग खाता (*Appropriation Account*); (२) वित्ती खाता (*Finance Account*) और (३) अंकेक्षण प्रलेख (*Audit Report*)। इनको जाँच कर यह समिति इनको अपने प्रलेख के साथ विधान-सभा में पेश करती है।

इस विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैंकि पब्लिक एकाउंटस् कमिटी अपनी जगह पर कायम रहे; परन्तु संघ तथा राज्यों में अनुमान-समिति (*Estimate Committee*) तथा स्थायी वित्त-समिति (*Standig Finance Committee*) दोनों की बड़ी आवश्यकता है। अनुमान-समिति में दोनों सदनों से सदस्य लिये जा सकते हैं या दोनों सदनों की अलग-अलग समितियाँ भी रह सकती हैं। दोनों तरीकों के अलग-अलग लाभ हैं। दोनों सदनों से एक ही समिति में सदस्यों को लेने का एक लाभ है कि सदनों के बीच ठोस काम के लिए सहयोग का अवसर बढ़ता है, और इस प्रकार उच्च सदनों में उत्तरदायित्व का भाव दृढ होता है। इन समितियों को बड़ी करने, अर्थात् इनमें सदस्यों की संख्या अधिक रखने, के भी कई लाभ हैं। एक राजनैतिक लाभ तो यह है कि प्रतिनिधि-सभाओं के सदस्यों से रचनात्मक काम लेने से उनमें जवाबदेही का भाव बढ़ता है—उनका अनुभव बढ़ता है और उनका

राज्य संचालन की समस्याओं का ज्ञान बढ़ता है। दूसरे, समितियों में सदस्यों की संख्या अधिक होने से बजट अनुमान के व्योरों की जांच-पड़ताल के लिए संयुक्त राष्ट्र की प्रतिकृति (Model) पर उप-समितियाँ बनाई जा सकती हैं। जिस प्रकार इधर व्यय की रकम और मदें बढ़ी हैं और बढ़ रही हैं, उनको दृष्टि में रखते हुए इन सब उपायों तथा संस्थाओं की बड़ी जरूरत देखी जा रही है। और अनुमित बजट में जाँच-पड़ताल का इतना यथेष्ट काम है कि साथ-साथ अलग स्थायी वित्त-समितियों का रहना, जो बराबर विधान-मण्डल की जीवन-अवधि तक सब नये वित्तीय-प्रस्तावों की लगातर जाँच-पड़ताल करती रहें, भी आवश्यक है। सरकारी व्ययक्षेत्र में वृद्धि इस चीज का सूचक है। जनता के आर्थिक जीवन-वृद्धि के क्षेत्र में अपनी थातीदारी को पूरी तरह समझें। साथ ही बहुत से राजकीय विभाग ऐसे हैं जिनके व्यय अनुमान की जाँच-पड़ताल में विशेषज्ञता की जरूरत होती है, और अनुमान-समिति की उपसमितियों में कुछ सदस्यों को लगातार काम करने से इनकी गूढ़ताओं का विशेष ज्ञान जन-हित के लिए हो जायगा।

समितियों की सहायता से जनता के प्रतिनिधियों का प्रशासन पर नियन्त्रण का एक और भी बड़ा लाभ यह है कि इससे राजनैतिक दलों के मतभेद की संकीर्णता को सीमित किया जा सकता है तथा सदस्यों की शक्तियों को रचनात्मक कामों में देश-हित के लिए लगाया जा सकता है। प्रतिनिधियों को कौन कहे, साधारण नागरिकों की भी यह एक उचित मनोवृत्ति है कि वे प्रजातन्त्र राष्ट्र के सामूहिक जीवन में उपयोगी होना चाहते हैं और समय-समय केवल मत देने के लिए मतदान-स्थलों में जाने से उनको संतोष नहीं होता है। इसी कारण अन्य देशों में प्रायः सभी प्रतिनिधि किसी-न-किसी कमिटी के सदस्य के रूप में रहकर रचनात्मककार्य करने की तृप्ति हासिल करते हैं।

सातवाँ अध्याय

व्यय की प्रणाली और उसका नियन्त्रण

अबतक हम सार्वजनिक वित्त के संवैधानिक नियन्त्रण और उनकी समस्याओं का विश्लेषण कर रहे थे। अब हमें देखना है कि जब धन के व्यय की स्वीकृति विधान-मण्डलों और राज्यपालिका की ओर से मिल जाती है तब आय को जमा करने, विभागों में आवंटन कोषों को चलाने, आवंटन का व्यय करने, लेखा रखने और लेखा के नियन्त्रण करने की कौन व्यवस्था है? धन का उचित उपयोग इन सबकी उचित व्यवस्था पर निर्भर है। व्यय का अन्तिम ध्येय यही है कि उससे उचित उपयोगिता हासिल हो।

अँग्रेजी शासनकाल में, भारत के लिए, वित्त का शासन, लंडन से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की ओर से होता था। धीरे-धीरे भारत-सरकार को सीमित अधिकार मिले और इसकी मात्रा बढ़ाई गई। इस कारण सन् १९३७ तक समग्र देश की राजकीय आमदनी एक ही भारत-सरकार के कोष में लेखे के लिए रखा गया समझा जाता था। सन् १९३५ के भारतीय संविधान में प्रान्तों के स्वयं शासन के अधिकार बढ़ाये गये, और उसी के समर्थन में सन् १९३७ में प्रान्तीय सरकारों के कोष केन्द्रीय सरकार से पृथक् किये गये।

अब स्वाधीन भारत के नये संविधान की २८३ धारा के अनुसार सन् १९५० से संघ की तथा राष्ट्रों की अलग-अलग संचित निधि (*Consolidated Accounts*), आकस्मिक निधि (*Contingency fund*) तथा जन-लेखा (*Public Accounts*) स्थापित की गई हैं। इनमें आमद जमा करने तथा धन निकालने की नियमावली बनाने का अधिकार संविधान की धारा २८३ के अनुसार विधान-मण्डलों को है। परन्तु जबतक यह नियमावली नहीं बनती है, तबतक के लिए राष्ट्रपति, राज्यपाल या राजप्रमुख नियमावली बना सकते हैं या पहले की नियमावली को ही लागू रखते हैं। व्यवहार में कुछ अदल-बदल के साथ आज भी सन् १९३६ की गवर्नर जेनरल की बनाई हुई नियमावली चालू है। साथ ही हम पाते हैं कि राज्यों के अपने आय-व्यय तथा कोषों के अधिपति होने पर भी संविधान की सातवीं अनुसूची (*Schedule*) की सूची (*List*) संख्या १ की ७६ वीं दाखिली (*Entry*) के अनुसार, खाता या राजकीय आयव्यय का हिसाब, केन्द्रीय सरकार के अधीन विषय में से है और इसके पोषक संविधान की १४८ से १५१ धाराएँ हैं, जिनके अनुसार कम्पट्रोलर और ऑडिटर जेनरल की बहाली राष्ट्रपति की ओर से होती है और उन्हीं को यह समग्र भारत के आय-व्यय रखने तथा हिसाब देने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है। राज्यों तथा संघ को कर लगाने, वसूल करने, कोषों का संचालन करने आदि का

अधिकार है; पर कम्पट्रोलर और ऑडिटर जेनरल का यह काम है कि वे संघ या राज्यों की राज्यपालिका और विधान-मण्डलों के शासन से स्वतन्त्र रहते हुए स्वतन्त्र रूप से उनके हिसाब तथा अंकेक्षण प्रलेख (Audit Report) राष्ट्रपति को दें। राज्यों में ये सब काम कम्पट्रोलर तथा ऑडिटर जेनरल की ओर से राज्य के एकाउंटेंट जेनरल करते हैं। कम्पट्रोलर और आडिटर जेनरल के अधिकार और कर्तव्य-विधान की धारा नं० १५० में तथा सन् १९३६ के नियमों के ११, १२, १५, १६, १७ वें स्तम्भ में दिये गये हैं। हम देख चुके हैं कि इसी पदाधिकारी को बजट तथा हिसाब के फारम और उनके शीर्षक बनाने का अधिकार है। वे ही समग्र संघ तथा राज्यों के हिसाब रखने के लिए संविधान के अनुसार उत्तरदायी हैं, हालाँ कि रक्षा, रैलवे तथा कुछ अन्य हिसाब अलग रखे जाते हैं।

परन्तु जब संघ तथा राज्यों के विभाग ही ब्योरेवार व्यय करने के लिए उत्तरदायी हैं तब यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक लेखे (Initial accounts) की जवाबदेही चुकौती करनेवाले तथा कोषों के अध्यक्षों पर रहे। इन्हीं प्राथमिक लेखे के आधार पर इनको संकलित करके मासिक प्रगामी लेखे बनाये जाते हैं और एकाउंटेंट जेनरल को अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी कार्यालय (Office) का, जिसमें आय-व्यय के लेखे रखे जाते हैं, निरीक्षण कर सकते हैं। साथ ही कार्यपालिकाओं की प्रार्थना पर एकाउंटेंट जेनरल के विभाग की ओर से स्थानीय शासनों (Local Bodies) के हिसाबों का भी निरीक्षण किया जा सकता है। कम्पट्रोलर तथा ऑडिटर जेनरल के अधीन एकाउंटेंट जेनरलों के अलावा अन्य अधिकारी भी हैं जो उनकी ओर से कुछ विभागों के विशेष प्रकार के हिसाबों का नियन्त्रण करते हैं।

बजट की स्वीकृति और विनियोग नियम एक्ट (Appropriation Act) के पास होने के बाद वित्त-मन्त्री विधान-विभागों को तथा एकाउंटेंट जेनरल (Accountant General) को इसकी सूचना देते हैं। विभागाध्यक्ष भी व्यय को स्वीकृत रूप में अपने अधीनस्थ निकासी, चुकौती और नियन्त्रण पदाधिकारियों को उचित रकम सौंपते हैं। कोई विशेष नये व्यय की अनुमति इस प्रकार देते समय विभागाध्यक्ष इसकी सूचना एकाउंटेंट जेनरल को भी देते हैं, और इन सबों की नियमितता की स्वीकृति एकाउंटेंट जेनरल प्रत्येक जिले के कोषाध्यक्ष को देते हैं।

अब हमें राजकीय जिला-कोषों की संचालन-प्रणाली को देखना है। हर एक जिले में एक कोष (Treasury) तथा कुछ उप-कोष (Sub-Treasury) होते हैं। जिलाधीश के ऊपर सरकार तथा ऐकाउंटेंट जेनरल की ओर से कोष-संचालन के लिए व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है। जिला-कोषाध्यक्ष (Treasury Officer) उनकी ओर से कोष-संचालन का काम जिलाधीश की देखरेख में करते हैं। जहाँ-जहाँ रीजर्व बैंक की शाखाएँ हैं या इम्पीरियल बैंक की शाखाएँ रीजर्व बैंक के अभिकर्ता (agent) के रूप में काम करती हैं, वहाँ-वहाँ आमद का वास्तविक निक्षेप तथा धन को स्वीकृत

बिलों पर चुकाना कोषाध्यक्ष की ओर से इन्हीं बैंकों का काम है। ऐसी जगहों पर कोषाध्यक्ष की जवाबदेही केवल बिलों या चालानों को पास करने, सबका दैनिक हिसाब रखने तथा मासिक हिसाब एकाउंटेंट जेनरल को भेजने भर की रहती है। परन्तु और जगहों में जहाँ चुकौती का काम करने के लिए बैंकों की शाखाएँ नहीं हैं, वहाँ सरकारी कोषों से ही चुकौती होती है और कोषाध्यक्ष को ही सब काम करना होता है। यह भी जान लेना चाहिए कि ये कोष और बैंक राज्य तथा संघ दोनों के लिए चुकौती करते तथा हिसाब रखते हैं, हालाँ कि रैलवे, डाक, तार आदि विभाग अपना हिसाब अलग रखते हैं। इस कारण हिसाब साफ रखने के लिए संघ के चालान, बिल, चेक आदि के फारम के रंग राज्यों के इन फारमों के रंग के नहीं होते और उनके लिए अलग रंग रखा गया है।

कोषों में रुपया जमा करने के लिए उचित खानाओं के साथ चालान के फारम एकाउंटेंट जेनरल द्वारा निर्धारित हैं कि आय का उचित शीर्षक में हिसाब रख सकें। उसी प्रकार व्यय के पक्ष में बिलों के अलग-अलग फारम हैं तथा उनमें खानापूरी के लिए ब्योरे तथा खाना निर्धारित हैं। बिलों का ठीक फारम पर होना, उनकी उचित खानापूरी, निकासी की रकम का स्वीकृत व्यय के भीतर होना और चुकौती का औचित्य इत्यादि के देखने की प्रारम्भिक जवाबदेही निकासी, चुकौती और नियन्त्रण के पदाधिकारियों (*Drawing, Disbursing and Controlling Officers*) की है। इन पदाधिकारियों के हस्ताक्षर के नमूने कोषों में रहते हैं, और कोषाध्यक्ष की ओर से बिलों को पास कराने के समय इनका मिलान कर लिया जाता है। कई ऐसे विभाग हैं, जैसे रक्षा, रैलवे, डाक और तार, जंगल तथा अन्य व्यावसायिक विभाग जिनके व्यय के रुपये उनके अपने-अपने लेखा-कार्यालय (*Accounts Office*) से बरामद होते हैं और वहाँ प्राथमिक हिसाब कोषों के बदले इन्हीं लेखा-कार्यालयों (*Accounts Office*) में रखे जाते हैं। परन्तु; वहाँ भी बिलों की जाँच कोषों द्वारा जाँच की पद्धति के अनुसार होती है, और उनके भी हिसाब बैंकों में कोषाध्यक्ष के यहाँ और एकाउंटेंट जेनरल के यहाँ भेजे जाते हैं।

अब हमें व्यय के नियन्त्रण की सीढ़ी के प्रत्येक रकम पर जाँचनेवाले पदाधिकारियों की जवाबदेही के क्षेत्र को तथा जाँच के अभिप्राय को देख लेना चाहिए।

शासन-विभाग के अध्यक्ष के लिए (*Head of the administrative Department*) विभाग के सब बिलों की जाँच असम्भव है। इस कारण विभागीय जाँच की जवाबदेही गजट-जद कार्यालयों के अध्यक्षों (*Heads of office*) पर रखी गई है जो वित्त-सम्बन्धी कामों के लिए निकासी, चुकौती और नियन्त्रण पदाधिकारी (*Drawing, Disburiing and Controlling officers*) माने जाते हैं। बिलों की जाँच में इनकी बड़ी कड़ी व्यापक जवाबदेही है। इनको देखना

होता है कि—(१) बिल उचित फारम में है, (२) इसकी माँग नियमानुसार है, (३) एक-सी माँग दोबारा नहीं आई है, (४) फ़ारम की खानापुरी ठीक है, (५) निकासी या व्यय के लिए रकम का उचित शीर्षक में विभागाध्यक्ष के यहाँ से आवंटन मिल गया है, (६) बिल की रकम आवंटन की निधि के अन्दर ही है, (७) बिल के द्वारा धन का कोई दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है और (८) बिल का व्यय मितव्ययिता के सिद्धान्त का उल्लंघन तो नहीं कर रहा है। इन पदाधिकारियों के ऊपर औचित्य तथा नियमितता के अलावा मितव्ययिता के लिए विशेष जवाबदेही रखी गई है।

कोषों के कार्यालयों में बिलों की जाँच में नियमितता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। कोषाध्यक्ष (*Treasury officer*) गजट-जद पदाधिकारियों के पास किये हुए बिलों की जांच करके रुपये की निकासी को अधिकृत करते हैं, और स्वीकृत बिल उनके यहाँ या सबूत या भाउचर (*Voucher*) के रूप में रख लिया जाता है। निष्कासण-पदाधिकारी को इसकी सूचना भेज दी जाती है कि कोषाध्यक्ष के कार्यालय में अमुक बिल को किस भाउचर संख्या में दर्ज किया गया।

कोष-कार्यालय (*Treasury office*) में कोषाध्यक्ष के अधीन दो प्रकार के हिसाब इन बिलों तथा निकासियों के रखे जाते हैं। बिलों के पास होने के पहले कोषाध्यक्ष के नीचे खजांची (*Treasurer*) और एकाउंटेंट इन बिलों की जाँच करके इनको पास करते हैं, तब इनपर कोषाध्यक्ष का हस्ताक्षर होता है। इन दोनों के अलग-अलग हिसाब के खाते रहते हैं—एक खजांची की रोकड़ बही (*Treasurer's cash-book*) और दूसरी एकाउंटेंट की रोकड़बही (*Accountant's cash-book*) इस व्यवस्था के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ध्येयों को समझ लेना चाहिए। यह एक बहुत उचित और आवश्यक रीति है कि रोकड़ तथा आय-व्यय के हिसाब एक ही हाथ में होना ठीक नहीं है; क्योंकि इससे धन-अपहरण (*Misappropriation*) का अवसर बढ़ जाता है। दोनों काम एक हाथ में रहने से रोकड़ में प्रहस्तन (*Manipulation*) कर के हिसाब को उसीके अनुसार मिला देना आसान हो जायगा।

इसके अलावा दो और कारणों से दोनों बहियों का अलग रहना आवश्यक होता है। खजांची की रोकड़बही से क्रमशः दिन भर के आय तथा व्यय के दर्ज होने के बाद दिन-प्रतिदिन रोकड़ की स्थिति जानी जाती है और किसी कोष-विशेष में रोकड़ की कमी दूसरी जगह की बढ़ती से पूरी की जाती है। इनके प्रलेख बराबर वित्त-विभाग तथा एकाउण्टेण्ट जेनरल को भेजे जाते हैं और उसी के आधार पर तोड़े की रवानगी का बन्दोबस्त आवश्यकता के अनुसार किया जाता है।

दूसरी बही, यानी एकाउण्टेण्ट की रोकड़बही भी आय-व्यय के नियन्त्रण के लिए अत्यावश्यक है। इसी के द्वारा लेखा का त्रिविध या तेहरा नियन्त्रण होता है,

जिसके आधार पर आय और व्यय का प्रतिदिन और प्रतिमास का क्रमागत जोड़ तैयार होता जाता है और दोनों के बीच संतुलन देखा जाता है।

इन सब के अलावा बैंकों से भी चुकौती या बरामदी का तथा चालान द्वारा जमा करने के लिखे नियमित रूप से एकाउण्टेण्ट जेनरल के यहाँ भेजे जाते हैं। इस प्रकार हिसाब या लेखा के पक्ष में क्रमागत जोड़ के लिए एकाउण्टेण्ट जेनरल के यहाँ कोषाध्यक्ष के अधीन खजांची की रोकड़बही के विवरण, उनके एकाउण्टेण्ट की रोकड़-बही के विवरण, विभागाध्यक्ष के रिटर्न तथा बैंकों के रिटर्न प्रतिमास के मिलते रहते हैं जिनके द्वारा प्रत्येक लेखा की दूसरे लेखों के साथ परस्पर जाँच होती रहती है। इसको ऊपर तेहरी जाँच कही गई है। परन्तु हम देखेंगे कि ये लेखे इस तेहरी जाँच के अलावा वित्तीय प्रशासन (*Financial administration*) के लिए और भी तरह से उपयोगी होते हैं।

कोषाध्यक्ष की यह जवाबदेही है कि प्रत्येक मास के आरम्भ में गत मास के लेखे शीर्षक उपशीर्षक आदि के अनुसार एकाउण्टेण्ट जेनरल को भेजें। इन लेखे के साथ सब बिल, भाउचर आदि उनकी अनुसूची के साथ भेजे जाते हैं। हम देख चुके हैं कि प्रत्येक बिल की चुकौती होने पर भी कोषाध्यक्ष उसका ट्रेजरी भाउचर नम्बर उसके निष्कासन-पदाधिकारी को भेजते हैं। प्रत्येक गजट-जद पदाधिकारी अपना मासिक व्यय का हिसाब (*Monthly return of expenditure*) अपने विभाग के अध्यक्ष के पास भेजते हैं। विभाग-अध्यक्ष इनका संकलन करके अपना मासिक व्यय-विवरण एकाउण्टेण्ट जेनरल को भेजते हैं। एकाउण्टेण्ट जेनरल के कार्यालय में कोष के विवरण और विभागाध्यक्ष के विवरण का मिलान किया जाता है। इनमें फरक होने पर उनकी सफाई दोनों ओर से लेकर हिसाब दुरुस्त किया जाता है।

जिस प्रकार व्यय के क्रमागत लेखे रखे जाते हैं, उसी प्रकार आय के भी। और एकाउंटेंट जेनरल के कार्यालय में ये दोनों क्रमागत लेखे ऐसे रखे जाते हैं कि शीर्षकों के अनुसार यह आसानी से बराबर जाना जा सके कि अनुमित (*Estimated*) आय की धारा तथा स्वीकृत व्यय की धारा अनुमान के अनुसार कहाँ तक संतुलन होता जा रहा है तथा दिन-प्रतिदिन शेष रोकड़ की कैसी स्थिति है।

यह सम्भव है कि राज्य भर के जोड़ और व्यय के जोड़ की धाराएँ बजट-अनुमान के अनुसार ही चल रही हों, तब भी सम्भव है कि किसी कोष-विशेष में रोकड़ की कमी हो जाय। ऐसी स्थिति में एक जगह के शेष रोकड़ को दूसरी जगह भेज कर स्थानीय संतुलन किया जाता है।

हमें अब यह देखना है कि आय तथा व्यय की धाराओं में कोई गम्भीर विषमता होने पर या व्यय का स्वीकृत रकम से अधिक होने या उसकी सम्भावना होने पर क्या किया जाता है।

हम देख चुके हैं कि कोषाध्यक्षों के तथा विभाग के अध्यक्षों के मासिक आय और व्यय-विवरण के प्रारम्भिक लेखाओं के आधार पर किस प्रकार एकाउण्टेण्ट जेनरल के यहाँ प्रधान या निम्न शीर्षकों में प्रत्येक प्रकार के आय तथा व्यय के जोड़ का संकलन होता है, और इनका मिलान खजाँची की रोकड़बही के साथ तथा रिजर्व बैंक के एकाउण्टेण्ट सेक्शन के विवरण के साथ किया जाता है। इन्हीं मासिक क्रमागत मिजानों के हिसाब की एक प्रति एकाउण्टेण्ट जेनरल वित्त-विभाग को भेजते हैं कि यह विभाग प्रति मास अपनी आय-व्यय की परिस्थिति को देख कर यथोचित कार्रवाई करे। इन्हीं हिसाबों के आधार पर पुनर्विनियोग (Reappropriation) सांकेतिक माँग, अनुपूरक माँग या अन्य साधनों का अवलम्बन किया जाता है। इनके आधार पर वित्तीय वर्ष के अन्दर चालू बजट के दो पुनरावृत्त अनुमान (Revised estimate) जिनमें से पहला वित्तीय वर्ष के मध्य में और दूसरा आगामी वर्ष के बजट-अनुमान के साथ संकलित किये जाते हैं।

अन्त में इन्हीं क्रमागत मासिक विवरणों तथा हिसाबों से आय-व्यय का पक्का हिसाब (Final accounts) संकलित होता है। वित्तीय वर्ष ३१ मार्च को समाप्त होता है और लेखा विषयक नियमों के अनुसार जबतक पक्के हिसाब (Actuals) दुरुस्त होने चाहिए। परन्तु इधर स्वाधीनता के बाद मासिक विवरण तथा पक्के हिसाब (Final accounts) निर्धारित और नियमित रूप से समय पर तैयार नहीं हो रहे हैं। जब ये तैयार हो जाते हैं तब इन्हींके आधार पर एकाउण्टेण्ट जेनरल दो प्रकार के लेखे तैयार कर के राज्यपालिका को तथा कन्ट्रोलर और आडिटर जेनरल के यहाँ पेश करते हैं। इनमें एक विनियोग लेखा (Appropriation Accounts) और दूसरा वित्तीय लेखा (Financial Accounts) कहलाता है। पहले में विनियोग ऐक्ट (Appropriation Act) तथा व्यय सम्बन्धी अन्य ऐक्टों की अवहेलनाओं–जैसे स्वीकृत रकम का समय पर समर्पण (Surrender) नहीं करना, रकम का लैप्स होना, रकम को बिना व्यय किये निकासी करके रखना, अनावश्यक अनुपूरक माँग से रकम लेना, अंशदान (Grants-in-Aid) के नियमों का उल्लंघन राजकीय व्यावसायिक कार्यों के हानिलाभ पर अंकेक्षण (Audit) आदि के वर्णन और सिफारिश रहते हैं।

वित्तीय लेखे (Financial accounts) में जमा तथा निकासी (Receipts and outgoing) राजस्व तथा पूंजी (Revenue and Capital account) इत्यादि रहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वित्त-प्रशासन में एकाउण्टेण्ट जेनरल के कार्यालय का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है। और हम देख चुके हैं कि ये दोनों लेखे विधान-मण्डल के जनलेखा समिति (Public-account Committee) के यहाँ सविस्तार विचार तथा प्रलेख के लिए भेजे जाते हैं।

आठवाँ अध्याय

अंकेक्षण (*Audit*)

पिछले अध्याय में व्यय की प्रक्रिया पर कैसे नियन्त्रण होता है और साथ ही, इसके द्वारा कैसे वित्त-प्रशासन का भी काम होता है, देखा गया है। परन्तु यह नियन्त्रण आय-व्यय की प्रक्रिया समाप्त होने के बाद भी जारी रहता है, जिसको हम अंकेक्षण (Audit) कहते हैं।

हम देख चुके हैं कि संविधान के द्वारा कम्पट्रोलर तथा आडिटर-जेनरल को तथा उनके विभाग को न्याय विभाग के समान कार्यपालिका के शासन से स्वाधीन रखा गया है। हमने यह भी देखा है कि कोषाध्यक्ष के कार्यालय में कोषाध्यक्ष के नीचे खजांची और एकाउंटेंट के काम एक पदाधिकारी के हाथ में नहीं होना चाहिए। सैद्धान्तिक दृष्टि से इसी प्रकार एकाउंटेंट जेनरल का पद अंकेक्षक (Auditor) से अलग होना चाहिए कि अंकेक्षण में लेखे, कोष-संतुलन, वित्त-प्रशासन आदि की निरपेक्ष भाव से जाँच हो सके। अन्य देशों की प्रथा भी यही है। परन्तु भारत में अभी तक दोनों काम एक ही पदाधिकारी तथा कार्यालय से होता आ रहा है। इन दोनों कामों को अलग करने पर इधर विचार हो रहे हैं; परन्तु इसके लिए बहुत बड़े रकम की आवश्यकता होगी, जिस कारण इस विचार पर जोर नहीं दिया जा रहा है। प्रशासन की दृष्टि से भी इस सम्मिलित कार्यप्रणाली का एक बड़ा लाभ यह है कि एक ही व्यय में और एक ही साथ लेखा रखने तथा उनके अंकेक्षण या जाँच का काम साथ-साथ होता जाता है और आजकल जब प्रशासन की गाड़ी साधारणतः इतने धीरे-धीरे चलती है तब यह एक छोटा लाभ नहीं है।

अंकेक्षण आय तथा व्यय और सब अन्य प्रकार के लेखे के किये जाते हैं। पिछले अध्याय में हमलोगोंने जो गजट-जद पदाधिकारियों की जवाबदेहीकी विशाल और गम्भीर सूची देखी है और विशेष करके जब हम उनकी मितव्ययिता के लिए भी जवाबदेही देखते और पाते हैं कि रुपये-पैसे के विषय में ये सब जवाबदेही व्यक्तिगत हैं और कोई भी गलती होने पर वे किसी निम्न अधिकारी के इसको नहीं मढ़ सकते हैं, तब हम इस परिणाम पर आते हैं कि विभागीय अंकेक्षण तो उनका भी एक रूटीन काम है। और अधिकतर ब्योरेवार अंकेक्षण इसी विभागीय रूटीन रूप से होता है या कम-से-कम होना चाहिए। एकाउंटेंट-जेनरल की ओर से लेखे की साथ ही जाँच होती जाती है और उसीके आधार पर अंकेक्षण-प्रलेख तैयार करते हैं।

व्यय के पक्ष में अंकेक्षण के जो ध्येय हैं उन पर अब हम विचार करें।

पहली बात यह देखनी होती है कि जो खर्च हुआ है उसके लिए उचित सत्ताधिकारी (*Authority*) द्वारा रकम स्वीकृत थी या नहीं। अर्थात् स्वीकृत बजट तथा विनियोग ऐक्ट के भीतर और वित्त-विभाग, विभागाध्यक्ष तथा एकाउंटेएट-जेनरल के द्वारा रकम के भीतर ही व्यय होना चाहिए।

दूसरी यह चीज देखी जाती है कि इसके बाद भी व्यय-प्रणाली की सीढ़ियों में अन्तिम सीढी पर भी व्यय समर्थवान अधिकारी (*Competent authority*) के द्वारा ही हुआ हो।

तीसरी बात देखी जाती है कि नियमित रूप से चुकौती हो, जिससे कि रकम के लिए फिर से दावी न हो सके।

चौथी बात यह देखी जाती है कि इस चुकौती की उचित रीति से फारम में खानापूरी की गई है।

पाँचवीं बात यह देखी जाती है कि व्यय-विभाग की भी विभागीय आय (*Departmental receipts*) उचित रीति से वसूल होकर उचित रीति से कोष में जमा की गई है।

छठी बात यह देखी जाती है कि यदि सामान खरीदे गये हों तो उन चीजों की कीमत ठीक हो तथा वे चीजें ठीक से रखी गई हों और स्टॉक-बही में वे दर्ज हों।

सातवीं चीज गोदाम (*Stores*) की जाँच (*Verification*) है, जो कई विभागों में बहुत महत्त्व की है।

अन्त में यह देखा जाता है कि खर्च मितव्ययिता को दृष्टि में रखते हुए किया गया है और अधिकारी के तथा किसी व्यक्ति-विशेष के लाभ पहुँचाने के लिए नहीं किया गया है।

राज्यों के एकाउंटेंट-जेनरल ही अंकेक्षण के भी प्रलेख को भारत के कम्पट्रोलर और ऑडिटर-जेनरल की तथा राज्यों की राज्यपालिका को समर्पित करते हैं। राज्यपालिका की ओर से इसको जनलेखा समिति के सामने रखा जाता है, जहाँ पर इसकी फिर जाँच होती है और जिन दोषों पर इसमें जिक्र रहता है उन पर उस व्यय के विभागाध्यक्ष से मौखिक कैफियत समिति की बैठक में ली जाती है। इसके बाद यह समिति अपने प्रलेख के साथ इस अंकेक्षण प्रलेख को विधानसभा को समर्पित करती है।

अंगरेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दों की अनुक्रमणिका